मानव मन्दिर

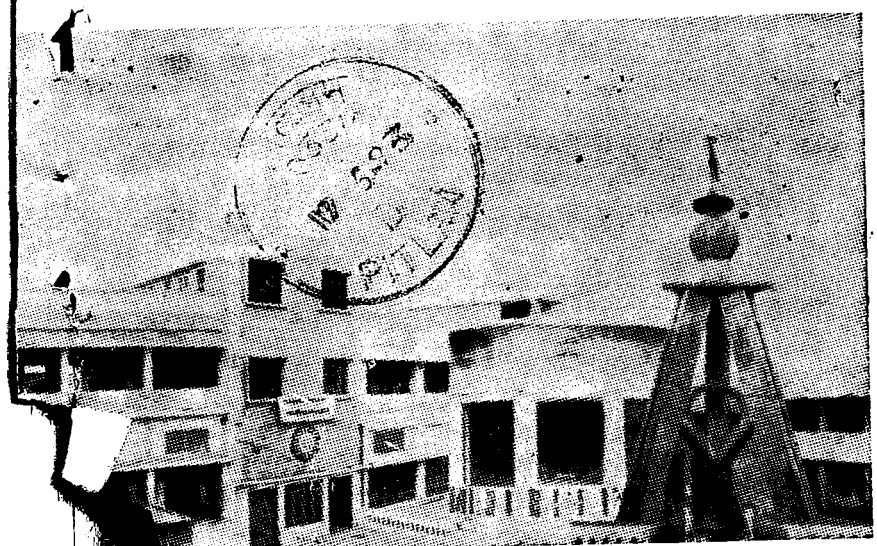

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सुतैहरी रोड, होशियारपुर

द्वारा अमूल्य भेंट

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Ravi Nanda hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publish-

Printed and Published by : Ravi Nanda at
Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur
for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में बगला मासिक सत्संग
20-6-93 को होगा ।

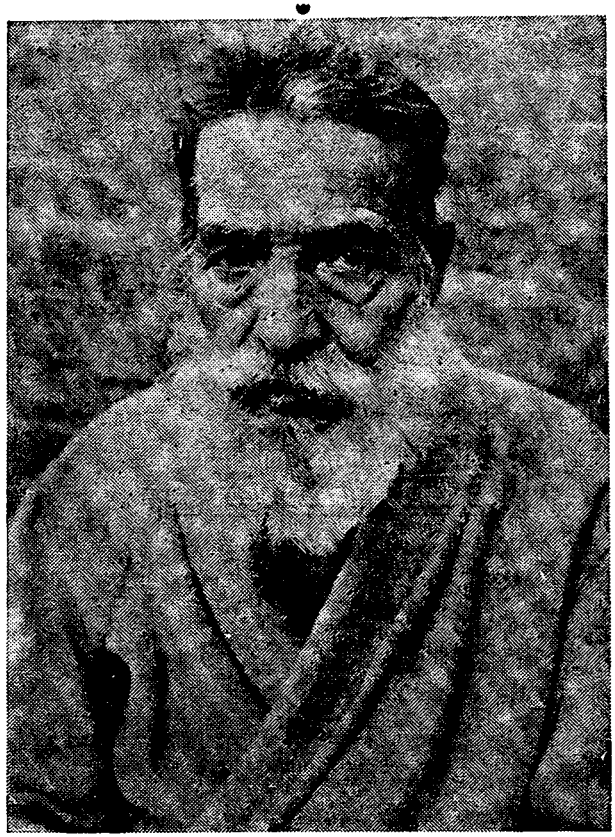

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

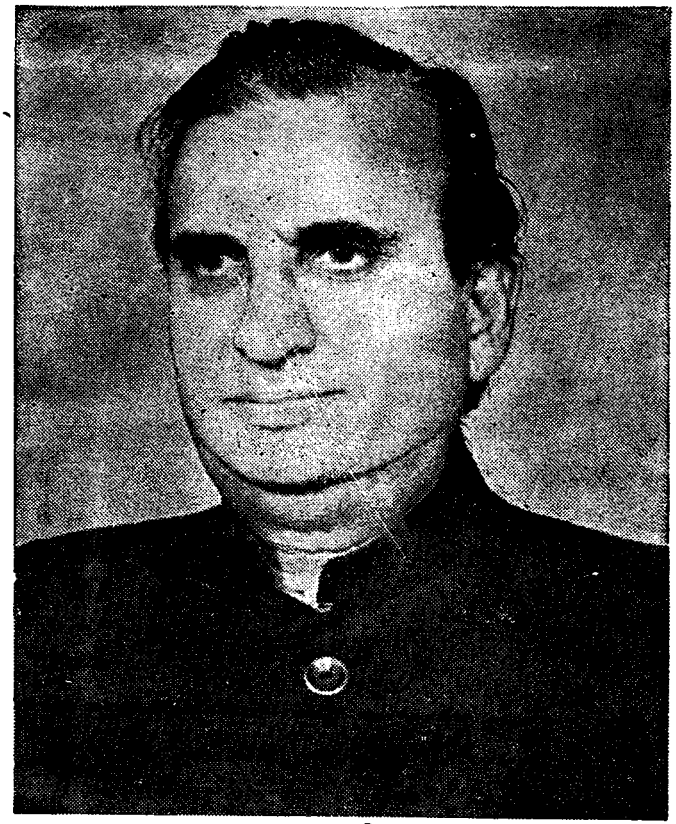

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक---

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
श्री रवि नन्दा

वर्ष 20	वीरवार 10 जून, 1993	संख्या 2

सोने का महल रुपे का छाजा।
छांड़ चला नगरी का राजा॥
कोई करे महल, कोई करे टाटी,
उड़ जाए हंस पड़ी रहे मांटी॥
आवत संग न जात संगाती।
कहा भयो दल बांधे हाथी॥
कहैं कबीर अन्त की बारी।
हाथ छाड़ ज्यों चला जुआरी॥

गाने वाले की वाणी में जादू था। उसने फिर भैरवी राग छेड़ दिया :—

सातों शब्द जो बाजते,
घर घर होते राग।
सो मन्दिर खाली पड़े,
बैठन लागे काग।
ऊँचा महल चुनावते,
करते होड़म होड़।
सुवरन कली ढलावते,
गये पलक में छोड़॥
कबीर मन्दिर लाख का,
जड़िया हीरा लाल।
दिना चार का खेल है,
विनस जायेगा काल॥
कबीर मरेंगे मर जायेंगे,
कोई न लेगा नाम।
उजड़ जाय बसायेंगे,
छोड़ बसन्ता गाम॥

रात गंवाई सोय कर,
दिवस गंवाया खाय ।
हीरा जन्म अनमोल था,
कौड़ी बदले जाय ।

मैंने इन दोहों को सुन कर अपने मन को लक्ष्मी भण्डार से दूसरी ओर लगाया। मन में विचार आया चलो तनिक शाही किले की सैर कर लें, जिससे मन बहल जाय और मन को शान्ति मिले। इस विचार को ले मैं राज द्वार तक जा पहुंचा। उस समय सेना की परेड का समय था। जंगी बाजे बज रहे थे। राजा स्वयं सेनापति के रूप में अपने सैनिकों की परेड का निरीक्षण कर रहे हैं। राजा बहुत ही शक्तिशाली है। उसे कई स्थानों से बहुत सा धन, कर के रूप में मिलता है। लोग उसक शक्ति के सामने अपना मस्तक झुकाते हैं। बड़े 2 धन मानी उसके मंत्रित्व को तरसते हैं। उसने लक्ष्मी को एक प्रकार से अपनी दासी बना रखा है। उसकी शक्ति का क्या ठिकाना ! सब कुछ उसके आधीन है। सब पर उसका शासन है। सारे देश में उसका सिक्का जारी है। उसका कथन कानून है। मैंने सोचा है कि कोरी लक्ष्मी से क्या होता है। लक्ष्मी से शक्तिशाली तो पार्वती भण्डार है। यदि ईश्वर कृपा करे, तो पार्वती पुत्र बनने में सब कुछ मिला रहता है। संयोग की बात, जब यह तरंगें मन में उठ रही थीं, मैं सैर करते 2 किले की दूसरी ओर जा पहुंचा। सामने से एक सिपाही गाता हुआ चला आ रहा था :--

1) जायेगा मैं जानी, मन रे तू जायेगा मैं जानी ।
आवेगी कोई लहर लोभ की, डूबेगा बिन पानी ।।

2) राज करते राजा जैहैं, रूपवन्ती रानी।
वेद पढ़ते पण्डित जैहैं, कथा सुनते ज्ञानी॥

3) योगी जैहैं जंगम जैहैं, जैहैं मानी ध्यानी।
कहैं कबीर सत भक्त न जैहैं, जिनकी मत ठहरानी॥

सिपाही बेचारे को तो यह मालूम नहीं था कि वह जो गा रहा है, उसमें कितनी गहराई है, परन्तु मेरे ऊपर उसका बहुत ही प्रभाव पड़ा। मैं सैर से जब वापिस आया, तो अपने कमरे में बैठ कर सोचने लगा। एक पुस्तक मेरी मेज़ पर पड़ी हुई थी, उस पर दृष्टि गई। उसमें बुद्धि विवेक की बातें थीं। मैंने उस पुस्तक को उठा कर पढ़ना शुरू किया, दो चार पृष्ठ पढ़ने पर, इस परिणाम पर पहुंचा कि धन तथा शक्ति से अधिक शक्ति तो विद्या में ही है। माना कि सम्पत्ति का भी महत्व है और शक्ति का उससे भी अधिक महत्त्व है, परन्तु विद्या के सामने इन दोनों का वश नहीं चलता। मनुष्य जितनी भी खोजें करता है, जितने भी आविष्कार करता है, जिनके माध्यम से वह धन तथा सम्पत्ति एकत्रित करता है, वे सब विद्या के कारण ही करता है। मनुष्य आविष्कार इस प्रकार के करता है कि एक 2 मनुष्य को हज़ारों मनुष्यों की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इन तोप बन्दूक, रेल और जहाज़ इत्यादि सब के जन्मदाता विद्वान ही तो होते हैं। राजा तक को विद्वानों का सम्मान करना पड़ता है तथा उनसे परामर्श करनी पड़ती है। अतः मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि सरस्वती भण्डार से, मनुष्य को हर चीज़ प्राप्त हो सकती है। अतः लक्ष्मी पुत्र और पार्वती पुत्र बनने की अपेक्षा सरस्वती पुत्र

बनना ही ठीक रहेगा, क्योंकि विद्या में ही सुख है और विद्वान लोग सबसे सम्मानित होते हैं। धनवानों को तो हजारों चिन्तायें लगीं रहती हैं। शक्तिशाली राजा को दूसरों के दुःखों से दुःखी रहना पड़ता है। लक्ष्मी भण्डार में सुख नहीं है और न ही पार्वती भण्डार में सुख है। सरस्वती भण्डार में फिर भी सुख है, वह फिर भी अपनाने योग्य है। जिसमें विद्या है वहाँ विद्या के कारण दुःखों का नाश जरूर होगा।

मैं अभी इन सब बातों पर विचार कर ही रहा था कि सन्तमत संग्रह भाग 2 नामक पुस्तक जो मैं पढ़ रहा था, हवा के झोंके से उसका पच्चीसवां पृष्ठ खुल गया। उसमें लिखा था :--

1) उदय अस्त की बात कहत हूं,
सब का किया विवेका हो।

2) घाटे बाढ़े सब जग दुखिया,
क्या गिरही वैरागी हो।
सुखदेव आचारज दुःख के डर से,
गर्भ से माया त्यागी हो।।

3) जोगी दुखिया जंगम दुखिया,
तपसी को दुःख दूना हो।
पण्डित दुखिया मूरख दुखिया,
सुख से सब जग सूना हो।।

4) सांच कहूं तो कोई न माने,
झूठ कहा नहीं जाई हो।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया,
जिन यह राह चलाई हो ॥

5) अवधू दुखिया, भूपति दुखिया,
रंक दुःखी विपरीति हो ।
कहें कबीर सकल जग दुखिया
सन्त सुखी मन जीती हो ।

इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ विद्या बुद्धि अधिक होती है, वहां दुःख अधिक होता है। जिसमें बुद्धि अधिक होती है, वह कष्ट भी अधिक सहन करता है। यह सरस्वती मनुष्य के हृदय में बसती है, परन्तु इसके आते ही सोच विचार, दुविधा, द्विचताई की अवस्था उत्पन्न हो जाती हैं। सरस्वती भी चैन नहीं लेने देती, प्रत्येक समय कहती रहती है :--

बयक सायत बयक लमहा बयक दम ।
दिगर गूँ भीं शबद अहवाल आलम ॥

अर्थात् छिन 2 और पल पल इस संसार की अवस्था में परिवर्तन होता रहता है।

जिसके प्राप्त हो जाने से मनुष्य का मन चंचल रहता है, जिसके आते ही मनुष्य सोच विचार की अवस्था में फंस जाता है क्या उसको जीवन का आदर्श बनाना उचित है ? इस प्रश्न का उत्तर तुम स्वयं अपने मन से पूछो।

मैं किसी की निन्दा नहीं करता, अपने 2 स्थान पर सभी का महत्त्व है। हम लक्ष्मी भण्डार से आहार प्राप्त

कर, पार्वती भण्डार से हाथ पाँव की शक्ति प्राप्त करके और सरस्वती भण्डार से ध्यान व विचार की योग्यता प्राप्त करके किसी और उद्देश्य की पूर्ति में लगे हुए हैं। यह तो नहीं हो सकता कि हम दिन भर खाते ही रहें, दिन भर डण्ड ही निकालते रहें अथवा दिन भर काम ही करते रहें और न ही हम दिन रात पुस्तकें ही पढ़ते रहें या पूरा दिन विचार व चिन्तन में व्यतीत कर दें। खाना, काम करना, पढ़ना सब अच्छा है। इसके बिना कभी काम नहीं चलता। मूर्ख हैं वे लोग, जो लक्ष्मी का सम्मान नहीं करते, वह सदा अनादर व दरिद्रता का जीवन व्यतीत करेंगे। मूर्ख हैं वे लोग, जो पार्वती माता का पवित्र दूध पी कर बल से काम नहीं लेते। ऐसे लोग निर्बल रह कर, जहाँ तहाँ ठोकरें खाते रहेंगे। मूर्ख हैं वे भी, जो सरस्वती का सम्मान नहीं करते, ऐसे मूर्खों को सदैव पशुवत जीवन बिताना पड़ेगा और दासत्व की अवस्था में पड़ा रहना पड़ेगा। मैं सिर झुकाता हूं लक्ष्मी को, मैं प्रणाम करता हूं लक्ष्मी को, मेरा नमस्कार है, सरस्वती के चरणों में। जिस प्रकार माता संसार में खिला पिला कर, बालक को काम काज के योग्य बनाती है, वैसे ही मैं भी लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती की गोद में पल कर, किसी काम के योग्य बनने की इच्छा करता हूं।

वह काम क्या है? वह काम यह है कि जिस शक्ति से लक्ष्मी, पार्वती के भण्डारों को पुष्टता प्राप्त होती है, जो इन सब का स्रोत है, उसकी ओर ध्यान दिया जाय।

कहा जाता है के ऐसे स्रोत के रोम रोम में ब्रह्माण्ड हैं। उसके एक एक रोम में करोड़ों ब्रह्मा, करोड़ों विष्णु और

करोड़ों शिव, अपनी २ शक्तियों को लिए हुए मौजूद हैं। जिसके एक 2 रोम में, अरब खरब सूर्य का प्रकाश है, जिसकी प्रशंसा सरस्वती और ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। वह विश्वेश्वर है और उसके भण्डार का नाम विश्व भण्डार है। सारी शक्तियों को इसी ही की शक्ति से शक्ति मिलती है और वे शक्तिशाली बनती हैं। इसके हज़ारों हाथ हैं इसकी आंखें लाखों व करोड़ों सूर्य चांद हैं। न इसका आदि है न अन्त। इसका सिर दिव्य है, इसका पांव पृथ्वी है, इसका मध्य भाग अन्तरिक्ष है। सारे ऋषि मुनि, सिद्ध, साधक इसमें बसते हुए स्तुति पाठ पढ़ा करते हैं। वह एक है और अनेक रूपों में दिखाई देता है। सब इससे निकलते हैं फिर इसी में ही समा जाते हैं। इसमें सबके लिए स्थान है। वह एक है और ऋषि इसको अनेक नामों से स्मरण करते हैं। योगी योग में इसका ध्यान करते हैं। ज्ञानी ज्ञान से इसको जानना चाहते हैं। यह सारा सन्सार जो दिखाई पड़ता है और जो दिखाई नहीं पड़ता, सब इसी में ही है और जो इस विश्व भण्डार से सम्बन्ध रखते हैं, उनको किसी वस्तु की कमी नहीं रहती।

वह एक था। उसने सोचा मैं दो हो जाऊं, वह दो हो गया। फिर वह हज़ारों, लाखों, करोड़ों रूपों में विभक्त हो गया। जो कोई भी विश्वभण्डार को अपना आदर्श बना कर चलता है, वह अमर कीर्ति को प्राप्त कर लेता है।

ज़िन्दगी मकसूद बहरे बंदीगस्त।
ज़िन्दगी बे बन्दगी शरमिन्दगीस्त॥

अर्थात् जीवन बन्दगी (भजनोपासन) के लिए है और बिना भजन बन्दगी का जीवन लज्जा की बात है।

तुम तो सार वस्तु के प्रेमी हो। सम्पत्ति, स्वास्थ्य और बुद्धि से लाभ उठा कर, इस ओर झुको। उसकी समीपता को अपने जीवन का उद्देश्य बना लो और फिर तुम्हारी विजय होगी। तुम कभी परास्त नहीं होगे, क्योंकि इस एक में ही सब कुछ है। इस एक राजा के हाथ में आ जाने से, सब पर स्वयं अधिकार मिल जाता है और फिर व्यक्ति सीधा लक्ष्मी,पार्वती तथा सरस्वती भण्डार के सार को प्राप्त कर सकता है।

एक नाम को जान कर,
दूजा दिए बहाय ।
जप तप तीर्थ वृत नहिं,
सतगुरु चरण समाय ॥
सब आये उस एक में,
डाल पात फल फूल ।
अब कहो पाछे क्या रहा,
गह पकड़ा जब मूल ॥
जो यह एकै जानिया,
तो जाना सब जान ।
जो यह एक न जानिया,
तो सब ही जान अजान ॥

(कबीर साहब)

ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे और तुमको अपने चरणों का प्रेम प्रदान करे।

मानवता मन्दिर, होशियारपुर में 21-7-1974 को दिया गया

परम सन्त परम दयाल पण्डित फ़क़ीर चन्द जी महाराज का मासिक सत्संग

राधास्वामी !

सन्तों ने जीवन को आस से शुरू किया है। यह सावन का महीना है और बाबा सावन सिंह जी महाराज का जन्मदिन है आज। उन्होंने कहा था, "फ़क़ीर! निर्भय हो कर काम करना।" ठीक है या ग़लत यह मुझे पता नहीं, मगर काम कर रहा हूं।

सावन आया मास दूसरा,
सास मरी घर आया सुसरा।
काली घटा श्याम मन हुआ,
श्याम कुँज में यह मन मुआ॥
गर बादल चमके बिजली,
मंसा मोड़ी आसा बदली।
सुरत निरत की झड़ियां लागीं,

धुन अनन्त शब्दन से चालीं ॥
वृद्ध अवस्था चेतन लागी,
काल आए जब सिर पर गाजी।
जमपुर से अब सद्गुरु राखें,
बहुतक जीव मौत दर ताकें ॥

नर्क और स्वर्ग का उल्लेख शास्त्रों में भी है और गरुड़ पुराण में तथा अन्य सम्प्रदायों में भी है। भिन्न 2 प्रकार की वाणियों ने दिमाग को चंचल बना रखा था और अब भी किसी सीमा तक चंचल बना रखा है। अब प्रश्न यह है क्या नर्क और स्वर्ग वास्तव में हैं कि नहीं? हाँ, हैं। कैसे? रात को तुम सो जाते हो और स्वप्न में तुम्हें सांप काट लेता है। स्वन में कोई कुएं में गिर जाता है और किसी को भयंकर दृश्य दिखाई देते हैं। कोई आकाश में उड़ता है, कोई डर से चिल्लाता है, कोई खुशी के दृश्य देखता है। यह सब क्यों घटित होता है? मैं समझता हूं कि स्वप्न की अवस्था में, मनुष्य के शरीर का बल कम हो जाता है और जो संस्कार भाव, विचार उसके मस्तिष्क पर अंकित होते हैं, वह अपना रूप बना कर, उसके सामने आते हैं। यदि मनुष्य के संस्कार अच्छे हैं, तो अच्छे दृश्य दिखाई देंगे, यदि संस्कार बुरे हैं, तो बुरे दृश्य दिखाई देंगे। इन दृश्यों से मनुष्य को सुख दुःख प्राप्त होगा।

शरीर का छूटना क्या है? शरीर का भूल जाना। यह हमारी मृत्यु है। यह लम्बी नींद है। मेरी आयु इस समय 87 वर्ष की है। बूढ़ा हो गया हूं और शरीर भी दुर्बल हो गया है। जीवन में मैंने जाग्रत अवस्था में जो भी

अच्छे या बुरे कर्म किए हैं उन सब के संस्कार मेरे मस्तिष्क पर अंकित हैं, वही फुरते रहते हैं। आज से 40 वर्ष पहले घटित घटनाओं के भी स्वप्न आ जाते हैं। यह मेरे पास प्रमाण है कि जब सास मर जाती है तो ससुरा जाग पड़ता है, अर्थात् जब शरीर निर्बल हो जाता है, तो मस्तिष्क पर पड़े संस्कार सामने आ जाते हैं।

तीन चार दिन हुए, मेरे सिर में चक्कर आ रहे थे। मैं डाक्टर के पास गया। वहाँ से लौटने पर मैंने रास्ते में एक भैंस देखी, वह साफ़ सुथरी थी और खूंटे से बन्धी हुई थी। उसे देख कर मुझे अपनी चालीस वर्ष पहले की भैंस की याद आ गई, जिसे अल्लाबख्श फाटक वाला सुबह पांच बजे आ कर नहलाता था। यह चालीस वर्ष पहले का संस्कार मेरे दिमाग़ में उपस्थित था मैंने स्वप्न में उसे देखा? एक दिन स्वप्न में देखा कि मेरे लिए एक आदमी खाना लाया, जिसमें मांस भी था। मुझे मांस को देख कर क्रोध आया और मैंने थाली को दूर फैंक दिया। फिर मेरी नींद खुल गई। मैंने सोचा ऐसा स्वप्न क्यों आया? फिर मुझे पचास वर्ष पहले की एक घटना की याद आई। यह घटना उस समय की है, जब दूसरे महायुद्ध में मैं छुट्टी से लौट कर पानी के जहाज़ में आ रहा था। मैस में खाना खाने गया और वैष्णव खाना मंगाया। परन्तु जब खाना सामने आया तो उसमें मांस भी था। मैंने कहा, "वैष्णव खाने में मांस क्यों है"? तो उत्तर मिला, "इसमें मांस नहीं, हां मछली ज़रूर है और मछली तो मांस में नहीं गिनी जाती।" मुझे क्रोध आ गया और थाली उठा कर दूर फैंक दी थी। यह फ़िल्म तो पचास साल पूर्व की थी, उसके संस्कार पचास

वर्ष तक भी गुम नहीं हुए। आज रात को भी मैंने अपने माता पिता को स्वप्न में देखा। कई बार स्वप्न में मैं रेल-गाड़ियों को देखता हूं और ऐसे लगता है कि वे आपस में टकरा जायेंगी, फिर मुझे होश आ जाता है। कई बार स्वप्न में प्रकाश को देखता हूं और कभी शब्द सुनता रहता हूं।

स्वप्न में मुझे रेलगाड़ियों की टक्कर क्यों दिखाई देती है? मैं स्टेशन मास्टर था। एक बार दो गाड़ियां आ रही थी। मैंने कांटे वाले से कहा कि वह शंट करना बन्द कर दे। उसने शंट करना बन्द कर दिया। कांटे में गाड़ियां अड़ गईं। मैं डर गया। सोचा कि अब तो दुर्घटना हो ही जायेगी और गाड़ियां आपस में टकरा ही जायेंगी। मैंने शोर मचाया, लोग जमा हो गये। गाड़ी को ढकेल कर आगे किया और बाहर निकाल लिया, दुर्घटना होने से बच गई। उस भय का जो संस्कार उस समय मेरे मस्तिष्क पर पड़ा वह आज पचास साल बाद भी मेरे स्वप्न में आ जाता है।

अब प्रश्न यह है कि इन संस्कारों को मिटाने या नष्ट करने का उपाय क्या है? सुनो --:

भक्ति बिन यह गति पाई,
नर देही सब बाद गंवाई।

गुरु-भक्ति क्या है? किसी गुरु से नाम लेने के बाद क्या ऐसे संस्कार धुल जायेंगे? नहीं, मेरे तो धुले नहीं, यदि धुल जाते तो मुझे ऐसे स्वप्न नहीं आते। मैंने मानवता मन्दिर बनवाया, परन्तु मानवता मन्दिर कभी स्वप्न में नहीं आता। मानवता मन्दिर में मैं हजारों

व्यक्तियों को मिलता हूं, किन्तु वे मेरे स्वप्न में नहीं आते। यहां तक कि मामचन्द तथा पुरुषोत्तमदास जो मन्दिर में रहते हैं और काफ़ी बिमार हैं और बहुत समय से मेरे साथ रहते हैं, कभी स्वप्न में नहीं रहते। जब मानवता मन्दिर से शाम को मैं अपने घर चला जाता हूं, तो वहां पर भी इनका ख्याल नहीं आता। जब सुबह वापिस मन्दिर में आता हूं तो इन्हें देख कर मुझे इनका विचार आता है। इन सब का कारण क्या है। इनका स्वप्न क्यों नहीं आता हालांकि रेलवे स्टेशन तथा नौकरी से सम्बन्धित घटनाओं का स्वप्न प्राय: आता रहता है ? इसका कारण यह है कि उस समय नौकरी के काम मैं मोह के वश में हो कर करता था उनमें मेरा लगाव था। पर मानवता मन्दिर का सारा काम निष्काम भाव से करता हूं, मेरे मस्तिष्क में इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। स्वप्न में तो वही वस्तु सामने आती है, जिसका संस्कार दिमाग़ में मौजूद होता है।

मैं न शास्त्र पढ़ा हुआ हूं और न ही लोगों को शास्त्र पढ़ाता हूं। मैं तो अपने अनुभवों को लोगों से बांटता हूं। वह कौन से संस्कार हैं, जो हमारे दिमाग़ में पड़े रहते हैं और स्वप्न में या समाधि के अवस्था की, या अन्त समय पर हमारे सामने आते हैं ? सुनो :--

गुरु मैं गुनहगार अति भारी।
काम क्रोध और छल चतुराई, इन संग है मेरी यारी ॥

तुम्हें स्वप्न में जब क्रोध आता है और तुम किसी को मुक्का मारते हो और तुम्हारा हाथ हिल जाता है। तुम स्वप्न में एक स्त्री बना कर उससे सम्भोग करते हो तो तुम्हा-

वीर्य नष्ट हो जाता है। ऐसा क्यों होता है। क्योंकि जागृत अवस्था में तुमको काम भोगने की चाह रहती है, वही ख्याल तुम्हारे दिमाग में बैठ जाता है और रात को स्वप्न के रूप में सामने आ जाता है।

मैं पिछली आयु में यानि कि पत्नी की मृत्यु से पहले 28 वर्ष तक उससे कभी पति पत्नी का सम्बन्ध नहीं रखा। जब वह मर गई, तो दो वर्ष के बाद वह मेरे स्वप्न में आई और बोली, "तुमने मेरे ऊपर बहुत जुल्म किया 28 वर्ष तक मेरे से पति पत्नी का सम्बन्ध नहीं रखा। मैंने स्वप्न में अपनी पत्नी से सम्भोग किया।"

मैं अपने आप से प्रश्न करता हूं कि इतना संयम रखने पर भी यदि मेरा यह हाल है तो सामान्य व्यक्ति की तो बात ही क्या है। मेरे प्यारो! देखो स्त्री सन्तान उत्पन्न करने के लिए अवश्य है, किन्तु केवल भोग भोगने के लिए नहीं। सन्त कहते हैं कि अपने कर्तव्य का पालन करो, आवश्यकता पड़ने पर क्रोध भी करो, सन्तान पैदा करने के लिए सम्भोग भी करो, सन्तान से पत्नी से प्यार भी करो, लेकिन काम में फंसो नहीं। ऐसी अवस्था में कोई संस्कार नहीं रहेगा।

ह, अहंकार ईर्ष्या, मान बड़ाई धारी।

ने लोभ के लिए, किसी को धोखा देते हो, स्कार तुम्हारे मस्तिष्क पर पड़ेगा ही। लोभ या लालच के लिए सारा दिन है कि सब के सब ग्राहक उसी ही की दुकानों पर नहीं जायें, तो उस लालच

के संस्कार उसके मस्तिष्क पर तो पड़ेंगे ही। ईर्ष्या भी बहुत भयंकर रोग है लोगों की ईर्ष्या यह होती है कि दूसरे लोगों के पास उनसे अधिक धन, मान और मर्यादा क्यों है ? और वह बिना कारण ही उनको हानि पहुंचाने में जुट जाता है।

कपटी लम्पट झूठा हिसक,
अस अस पाप करारी।
दुःख निरादर सहा न जाई,
सुख आदर अभिलाष भरारी॥

यह हैं संस्कार जो हमारे दिमाग पर पड़ते हैं और रात को सोते समय हमारे स्वप्न में आते हैं। यदि बुढ़ापे के कारण, आदमी अधिक निर्बल हो जाय, तो यह संस्कार जाग्रत में या अन्त समय पर बेहोशी के समय रूप बना कर सामने आते हैं।

मेरी स्त्री मेरे स्वप्न में क्यों आती है, क्योंकि मैं अपनी स्त्री से बहुत ही प्यार करता था। एक बार स्वप्न में एक आदमी मेरे पास आया और बोला, "मेरी लड़की, जो कि पिछले जन्म में आपकी पहली पत्नी रामरक्खी थी, आपसे ब्याह करना चाहती है।" मैंने उसे कहा, "भई! मैं तो बूढ़ा हो गया हूं मैं शादी नहीं करूंगा।" वह बोला, परन्तु मेरी लड़की का तो मरण व्रत है कि वह शादी आपसे ही करेगी।" मैंने उस आदमी को उसकी लड़की को बुलाने के लिए कहा। वह लड़की मेरे पास आई, इतने में मेरी नींद खुल गई ऐसा स्वप्न मुझे क्यों आया ? क्योंकि मैं रामरक्खी से प्यार करता था। मेरा उसमें लगाव था। वह सुन्दर थी और उसके शरीर से चन्दन की खुश-

जो मुझे बहुत ही अच्छी लगती थी। जब वह मायके चली जाती थी, तो मैं उसकी रज़ाई को सूंघा करता था। मन बड़ा चंचल है। किसी और को तो क्या कहूं, इस आयु में भी मुझे कई बार ऐसे विचार आ जाते हैं जिनको मैं बिलकुल पसन्द नहीं करता। फिर ऐसे विचारों को दूर कौन कर सकता है? गुरु--केवल गुरु।

हजूर महाराज गुरु बने, लेकिन वह अपने आपको गुरु कहने की आज्ञा नहीं देते थे और कहते थे, "गुरु तो राधास्वामी दयाल ही हैं। मैं सन्त नहीं, बल्कि मैं तो सन्तों का दास हूं। कितने सच्चे थे गुरु महाराज जी। परन्तु आज कल के गुरुओं को तो देखो भोले भाले लोगों को यह कह कर कितना धोखा देते हैं कि अन्त समय में वे चेलों को लेने आयेंगे। उन्हें सतलोक ले जायेंगे। तुम स्वप्न में जब डर जाते हो, उस समय तुम्हारे घर वाले या तुम्हारे गुरु तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकते, आप ही सोचिए कि वह आपके अन्तिम समय में आपको लेने कैसे आयेंगे। यह धोखा है, मक्कारी है, भोले-भाले लोगों का ठगना है। गुरु का प्रेम निष्काम होना चाहिए।

इस चंचल मन को बस में करना बहुत ही कठिन है। जब तक शरीर बलवान है, तब तक आदमी कोशिश करके मन को काबू कर सकता है। यह सम्भव है। लेकिन जब बुढ़ापा आ जाता है, शरीर बहुत दुर्बल हो जाता है, तब मन बहुत बलवान हो जाता है तो मन को वश में करना असम्भव सा हो जाता है। बुढ़ापे में आदमी अपने शरीर की ओर से बेसुध सा हो जाता है, और शरीर छोड़ने के समय उसके दिमाग़ पर पड़े हुए संस्कार, उसके सामने आते हैं।

वह डरता है, या प्रसन्न होता है। उसके शरीर की चेतना नहीं रहती।

बृद्ध अवस्था चेतन लागी,
काल आये जब सिर पर गाजी।
यमपुर में अब सतगुरु राखें,
बहु तक जीव मौत दर ताकें ॥

यमपुर क्या है? हमारे ग़लत विचारों के जो संस्कार, हमारे दिमाग़ पर पड़े होते हैं वह रूप बना कर हमको डराते हैं। इसी का नाम ही यमपुर है। अब सतगुरु यमपुर से कैसे बचाता है? सन्तमत में या हिन्दुओं में मनुष्य को एक इष्ट बनाने को कहा जाता है। अपने 2 विश्वास के अनुसार, जिसका जो भी इष्ट हो, चाहे वह राम का है, चाहे वह कृष्ण का, चाहे वह किसी देवी देवता का है या किसी गुरु का, यदि मरते समय मनुष्य का इष्ट सामने आ जाय, तो उसका मन उन बुरे और भयानक रूपों से हट कर इष्ट की ओर ही लग जायेगा और वह यमराज के डर से छुटकारा पा जायेगा। वे लोग धन्य हैं जिनको मरते समय पर गुरु का रूप आ जाता है।

तुम लोग महसूस नहीं करते कि स्वप्न में तुम दुनिया को भूल जाते हो और दुनिया में स्वप्न को भूल जाते हो। तुम अपने स्वप्न को देखो। स्वप्न में तुम डरते हो परन्तु जब तुम जग जाते हो तो उस डर को भूल जाते हो और समझते हो कि स्वप्न कुछ नहीं। ऐसे ही आदमी यदि नेक हैं, तो वे जाग्रत की बजाय स्वप्न अवस्था में अपने कर्म भोग लेते हैं और जगने पर उसे भूल जाते हैं। जाग्रा अवस्था में, जो कर्म कई वर्षों में करता है, वह स्वप्न में एक ही रात में

कर जाता है। यह नित्य ही सबके साथ घटित होता है, मगर लोग जाग्रत अवस्था में आ कर उसको ग़लत समझते हैं, क्योंकि उन्हें कोई समझाने वाला नहीं मिलता। अधिक स्वप्न किसको आते हैं? जो अधिक खाता है या जिसका शरीर निर्बल होता है या जिस स्त्री का मासिक धर्म ठीक नहीं आता।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरिया और तुरियातीत, यह हमारे जीवन की विभिन्न दिशाएं हैं। इन अवस्थाओं को हमारा आपा (self) महसूस करता है। जीवन की सम्पूर्ण अवस्थाओं का आनन्द लेना जीवन का उद्देश्य है। इसलिए जीवन में हंसो, खेलो और ख़ुश रहो। शरीर में रहते हुए स्वास्थ्य का आनन्द लेना, मन में रहते हुए मन का आनन्द लेना, और समस्त अवस्थाओं का आनन्द लेना और फिर जहां से हम आए हैं वहा समा जाना ही मनुष्य के जीवन का ध्येय है।

हर एक अवस्था में आत्मा की दशा भिन्न होती है। शास्त्रों में लिखा है कि विज्ञानमय कोष का सिर आनन्द है। दायां कन्धा सन्तोष है, शरीर आनन्द है और विज्ञानमय कोष को पूंछ ब्रह्म है। ब्रह्म क्या है? ब्रह्म प्रकाश है। प्रकाश का साधन करने से बेफ़िक्री, बेग़मी और आनन्द प्राप्त होता है। हज़ूर महाराज जी कहते हैं कि यदि अभ्यास करने से तुमको बेफ़िक्री और बेग़मी नहीं आती तो तुम्हारा अभ्यास ग़लत है। अपने आपको स्वस्थ रखने की कोशिश करो, आनन्दमय जीवन व्यतीत करने की कोशिश करो।

मन से बचने का क्या इलाज़ है? इलाज है मन से

ऊपर चले जाना। लेकिन यह बहुत ही कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति मन से ऊपर नहीं जा सकता। जब तक माया के रूप को कोई समझेगा नहीं, वह मन के आगे जा ही नहीं सकता, उसको मोक्ष नहीं मिल सकता।

कभी - 2 ख्याल आता है कि मैं किसी का क्या भला कर सकता हूं। संसार में समय 2 बहुत से सन्त महात्मा आए। उन्होंने संसारियों के लाभ के लिए बड़े प्रयत्न किए। पर कितने लोगों का कल्याण हुआ कौन तरे? मैं भी अपना कर्म भोगता हूं। मैं जानता हूं कि संसार में मेरी शिक्षा से बहुत लाभ नहीं हो सकता। मेरी शिक्षा तो केवल विशेष व्यक्तियों के लिए ही है। दाता दयाल जी महाराज जी से प्रार्थना करता रहता हूं कि वह मुझे अपने चरणों में मिला लें और मेरे कर्म कट जायें। जीवन का खेल था। बहुत खेल लिया। कब चला जाऊंगा, पता नहीं।

तुम लोग गृहस्थी हो, तुमको दुनियादारी की बातें बताता हूं। मेरे प्यारो! तुम्हारा मन ही सब कुछ है। मन को तुम जैसा संस्कार दोगे, तुम वैसे ही बनते चले जाओगे। अब समय बदल गया है। महंगाई बहुत बढ़ गई है। जहां तक हो सके, उस वस्तु का प्रयोग करो, जिसके बिना तुम्हारा काम न चल सके। हां मालिक ने यदि तुम्हें अमीर बनाया है फिर भी अपने ऊपर कम खर्च करो और किसी ग़रीब की सहायता करो।

मैंने एक बार गुलज़ारी लाल नन्दा को यह कहा था कि कांग्रेस वाले गुरु द्रोही हैं। उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा का पालन नहीं किया। महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति

के बाद यह कहा था कि अब कांग्रेस पार्टी को समाप्त कर दो और सरकार चलाने के लिए एक नई पार्टी बनाओ। लेकिन कांग्रेस वालों ने अपने स्वार्थ, मान, मर्यादा और कुर्सी के लिए महात्मा गान्धी की आज्ञा का पालन नहीं किया और उसका भयंकर परिणाम आपके सामने है। गुरु की आज्ञा का यदि पालन किया गया होता तो आज देश की यह दुर्दशा न होती। महात्मा गांधी अपने समय के अवतार थे, गुरु थे रहस्य ज्ञाता थे। उन्होंने परिस्थितियों का निरीक्षण करके कांग्रेस पार्टी को समाप्त कर देने की हिदायत दी थी परन्तु स्वार्थी लोगों ने उस युग पुरुष की आज्ञा का पालन नहीं किया और देश को रसा तल में पहुंचा दिया। गुरु की आज्ञा का पालन न करने का यही परिणाम होता है।

यह मालिक अनन्त है और हम उसके अंश है। उसकी मौज में हमें खुश रहना चाहिए। जब तक शरीर में हो आनन्दपूर्वक रहो। दुःखियों की सहायता करो। सबसे पहिले अपने बूढ़े मां बाप, गरीब भाई बहिन और अपने बच्चों की सेवा अपना कर्तव्य समझ कर करो। फिर यदि हो सके तो दूसरों की सेवा करो।

केवल मेरे चरणों का ध्यान करने से तुम धुर पद नहीं जा सकते। सत्गुरु शब्द स्वरूपी राधास्वामी दयाल हैं और उनके चरण प्रकाश हैं। वह प्रकाश तुम्हारे अपने अन्दर ही है। शास्त्र उसको सावित्री कहते हैं।

अचिन्त निर्भय अशोक हो कर जीवन व्यतीत करो। हाय हाय करने से कुछ नहीं बनता। अब मेरा प्यारा रामचन्द बीमार है। वह 35 वर्ष से मेरी लगातार सेवा

कर रहा है। ऐसे ही पुरुषोत्तम दास मेरा 50 वर्ष से साथी है, मित्र है। लेकिन अब वह भी बीमार है। यदि मुझे आन्तरिक ज्ञान नहीं होता तो मैं इन दोनों की बिमारी से बहुत चिन्तित होता, परन्तु अब मौज में रहता हूं।

सम्पूर्ण जगत की पीर को तो तुम हर नहीं सकते। कुदरत ने जिनको तुम्हारे निकट ला कर खड़ा कर दिया है उनकी पीर को देखो। अब मेरा लड़का पदम बहुत ही दूर नौकरी करता है। वह मेरे पास रह कर मेरी सेवा तो नहीं कर सकता। वह मेरी आर्थिक सहायता अवश्य करता है यह है उसकी सेवा। शेष मेरी सेवा तो आप ही करते हैं इसलिए मैं आप लोगों की पीर को महसूस करता हूं।

यह फ़कीर है गुरु का प्यारा,
महावीर चितधीर।
चाह गई चिन्ता सब भागी,
आया भव निधि वीर॥
हंस रूप धर त्याग नीर को,
गह लिया ज्ञान का क्षीर।
राधास्वामी गुरु का सच्चा बालक,
पहर वैराग का चीर॥

ज्ञान यह नहीं कि मैं खुदा हूं। मैं यह नहीं कहता कि मैं ब्रह्म हूं, या सत्, अलख और अमम हूं। मैं कहता हूं कि मैं तो उस मालिक का अंश हूं, उस मालिक का जिसका कोई अन्त नहीं मिलता।

खोजत खोजत खो गया,
पाया नहीं अन्ता ।
वृथा निकली खोज,
खोज से कुछ नहिं बनता ॥

❖ महत्त्वपूर्ण सूचना ❖

दानवीर सत्संगियों तथा श्रद्धालुओं से अनुरोध है कि वे 'मानवता मिशन' के लिए भेजे जाने वाले सभी धनादेश, अर्थात् मनीआर्डर, चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट केवल 'फ़कीर लायब्रेरी चैरिटेबल ट्रस्ट रजिस्टर्ड अथवा एफ. एल.सी.टी. होशियारपुर को ही भेजें, किसी व्यक्ति, अधिकारी को नाम से अथवा पदधारी को कदापि न भेजें। इस बात की अनदेखी करने से दानराशि हिसाब में लेना संभव न हो सकेगा।

इससे भी अधिक ज़रूरी बात यह है कि दान भेजने वाले सज्जन, अपना नाम तथा पूरा डाक पता (ठीक पिन कोड सहित) बहुत स्पष्ट लेख में, जहां तक हो सके अंग्रेजी लिपि के बड़े अक्षरों में, लिखा करें। यदि स्वयं स्पष्ट अक्षरों में न लिख सकें तो किसी अन्य स्पष्ट लिखने वाले व्यक्ति से लिखवा लिया करें।

सत्संग

परमसन्त हजूर मानव दयाल

जी महाराज का

मानवता मन्दिर, होशियारपुर

रविवार 28-6-92

सतगुरु एक तुम्हारी आस ।

भूल भरम पड़ समझी अलग हूं,
तुम तो मेरे पास ।
रोम 2 व्यापक मेरे तन में,
तुम सांसों के साँस ॥
तुम नहीं गगन पता न पृथ्वी,
तुम न मेरू कैलास ।
हृदय गुफा में मेरे बिराजे,
अन्तर घट में बास ॥
सहसकमलदल सहस रूप हो,
भूदल मध्य निवास ।
त्रिकुटी त्रिपुटी रूप त्रिगुन विधि,
अ उ म परकास ॥

सुन्न में दुविधि प्रकृति पुरुष तुम,
स्वामी सेवक दास ।
महासुन्न अद्वैत तत्व एक,
स्वांस कहूं के भास ॥
भँवर में काली काल बन व्यापे,
काल में काल बिलास ।
आगे सतपद सत्त तत्व प्रभु,
सत् में सत्त उजास ॥
अलख अगम राधास्वामी अनामी,
सत् चित् आनन्द रास ।
सर्व कला संग मुझ में समाने,
कैसे होऊं उदास ॥

राधास्वामी :-

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, सत्संगी भाइयो और बहनो! आज का बहुत ही अच्छा शब्द पढ़ा गया। परमदयाल जी महाराज का सत्संग सुना। वह नामदान की बात कर रहे थे। उनका भी यही मत है कि किसी भी व्यक्ति को नामदान तब तक मिला हुआ नहीं समझना चाहिए, जब तक कि काल कर्म से छुटकारा नहीं मिल जाता। काल का मतलब है समय का परिवर्तन। समय परिवर्तनशील है। कभी अच्छे अनुभव होते हैं, कभी बुरे अनुभव होते हैं। कभी दुःख होता है और कभी सुख होता है। इस सुख-दुःख के उतार चढ़ाव में यदि तुम्हारा मन विचलित नहीं होता, तब समझो तुम्हें नाम-दान मिला। अर्थात् नाम दान का फल मिला। नामदान तो एक विधि है, रास्ता है, पन्थ है। इसीलिए राधास्वामी मार्ग को

राधास्वामी पन्थ कहते हैं। यह एक सच्चाई है कि जो व्यक्ति पन्थ पर चल रहा है, मालिक के रास्ते पर चल रहा है, वह उस रास्ते पर चलते-चलते ऐसी मंज़िल पर पहुंच जाता है, जहां पर रास्ते की या पन्थ की ज़रूरत नहीं रहती है। पन्थ को छोड़ देना पड़ता है। परमदयाल जी महाराज कहते थे कि पन्थाई पन्थ को खा जाती है। अब इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है, कि जिस पन्थ पर हम चलते हैं, या कोई राजयोग पर चल रहा है या हठ योग पर चल रहा है---यह सभी रास्ते हैं। जैसे सीढ़ी पर चढ़कर मंज़िल पर पहुंच गये, तो आपको सीढ़ी हटा देनी चाहिए, वरना नीचे आ जाओगे। किसी धर्म में या किसी सम्प्रदाय में पैदा होना पाप नहीं है, लेकिन उसी धर्म या सम्प्रदाय के दायरे में ही मर जाना मूर्खता है अर्थात् तुम जिस रास्ते पर चल रहे हो, उस रास्ते पर चलकर तुम मंज़िल पर पहुँच गये, तब तुम्हें नीचे के दर्जो की ज़रूरत नहीं है। यह जितने भी धर्म हैं, वह सिर्फ मदद करने के लिए हैं। समुद्र के किनारे लोग तैरते हैं, जिनको तैरना नहीं आता, वह किस्म 2 के तुम्बे बांधते हैं। रबड़ की शैय्या पर लेटे रहते हैं। सैफ्टी बैल्ट बांध लेते हैं। इन चीजों से शुरू २ में आदमी तैरता रहता है। अगर इन्हीं चीज़ों से तैरता रहेगा, तो सीखेगा कब? तैरना सीखने वाले व्यक्ति को यह सब चीजें उतार कर देखना चाहिए कि मैं तैर रहा हूं या यह सब चीजें तैर रही है। मेरे कहने का मतलब है कि यह जितने धर्म हैं, चाहे कृष्ण की भक्ति हो या राम की भक्ति हो, यदि तुम सारी उम्र राम - राम करते रहोगे, तो राम नाम रूपी बैल्ट तुमने उतारी नहीं। जब तक तुम

सुमिरन करते 2 उस मालिक के साथ जुड़ नहीं जाते, वैसे नहीं हो जाते जैसा तुम्हारा इष्ट है, तब तक तुम्हें नामदान नहीं मिला। सुमिरन ध्यान अपने मालिक को, अपने प्रीतम को याद करने का एक तरीका है। जब तुम उसके बताये हुए नाम का सुमिरन करते रहोगे, तो वह तुम्हें अन्तर में अनेक दृश्यों को दिखाता हुआ, अनेक दर्जो से गुजारता हुआ सत् लोक में पहुचा देगा। सत् की अवस्था है। यह दर्जे नीचे से ऊपर की तरफ चलते हैं। नीचे के दर्जे हैं सहस्त्रदल कमल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भँवरगुफा। यह ज़रूरी नहीं है कि हर व्यक्ति इन दर्जों से गुज़रे। जिन लोगों ने पिछले जन्म में भक्ति की होती है, वह इन दर्जों से नहीं गुज़रता। वह सीधा ऊपर के दर्जे पर जाता है। उसे चांद सितारे दिखाई देते हैं। यह सब तुम्हारे प्रेम की निशानी है कि तुम इन दर्जो से गुज़र कर अपने प्रीतम को मिलने जा रहे हो। परमदयाल जी महाराज कहते थे कि अब मुझे शंख, घन्टा आदि सुनाई नहीं देते।

सहस्त्रदल कमल का मतलब है-हजारों पंखुड़ियों वाला फूल। हमारे हज़ारों ख्यालात हैं, इच्छाएं हैं और ऊपर भी हज़ारों शक्तियां इस जगत् के लिए काम कर रही हैं। उनके पीछे एक ज्योति है। सहस्त्रदल कमल के आगे त्रिकुटी है। इसमें तीन चीजें हैं। अ उ म। अ है विराट या ब्रह्मा। यह मालिक का स्थूल शरीर है। इस स्थूल शरीर से सारा जगत् कोटि 2 ब्रह्माण्ड चाँद सितारे और अनेकों अनेक आकाश गंगाऐं निकली हैं। इसको विराट कहते हैं। ब्रह्मा के पीछे एक और सूक्ष्म तत्त्व है, जो ब्रह्माण्डी शरीर है। उसके पीछे ब्रह्माण्डी मन है। यह

सूक्ष्म होता है। ब्रह्माण्डी मन इस भौतिक जगत् को अर्थात् स्थूल शरीर को शक्ति देता रहता है। इसी तरह से तुम्हारा मन तुम्हारे शरीर को शक्ति देता रहता है। यदि तुम्हारा मन टिक जाये, तो तुम्हारे शरीर के रोग अपने आप दूर हो जायेंगे। मन का टिकाव सतगुरु का सुमिरन करने से होता है। इससे मन की चंचलता, उदासी दूर हो जाती है। जिस प्रकार ब्रह्माण्डी मन सारे जगत् की रक्षा कर रहा है, वैसे ही तुम्हारा टिका हुआ मन, तुम्हारे शरीर की रक्षा करता है। इसीलिए सतगुरु तुमको बचाने वाले हैं। सतगुरु में ध्यान लगाने से तुम्हारा मन मज़बूत हो जाता है। इस प्रकार अ है ब्रह्मा उ है विष्णु और म है शिव। त्रिकुटी में तीन हैं। अ उ म अर्थात ब्रह्मा, विष्णु और शिव। जगत पैदा हुआ, उसका पालन पोषण विष्णु ने किया। लेकिन मन जहां से निकला है, जिस पर मन आधारित है, वह प्रकाश का कारण शरीर अर्थात आत्मा है। वह है म अर्थात् शिव।

अब त्रिकुटी के आगे सुन्न का दर्जा है, महासुन्न और भँवरगुफा का दर्जा है। यह भी ॐ है सुन्न के अन्दर दो पना होता है। तीसरा निकल गया और दो पना रह गया। सुन्न के अन्दर भी आनन्द होता है। इसमें गुरु का शरीर शिष्य के शरीर से मिल जाता है। इसमें दो का भाव है। महासुन्न के अन्दर शिष्य भी नहीं रहता और गुरु भी नहीं रहता। यहां पर एकत्व का अनुभव होता है। यहां पर आपका शरीर सूक्ष्म मन में मिल जाता है। भँवर गुफा के अन्दर एक और अनुभव होता है और वह अनुभव है सोहम का। यहाँ पर द्वैत का भाव सोहम में मिल जाता

है। मैं आपको एक चिन्हात्मक बात बता रहा हूं। वह भी ॐ है, मगर वह सूक्ष्म है अर्थात ब्रह्माण्डी ॐ है। अब पराब्रह्माण्डी ॐ क्या है ? सत्लोक में सत के अन्दर प्रकाश है, शब्द है। सत्लोक पहुंचने से मृत्यु नहीं होती। मौत से तो निकल गया, मगर दातादयाल कह रहे हैं :—

भंवर में काली काल बन व्यापे,
काल में काल विलास।

काल में काल मिला अर्थात् सोहम् हो गया, उसमें मिल गया। अब 'म' हुआ न! सुन्न अ है, महासुन्न उ है और भंवरगुफा 'म' हो गया। मैं जो बात कहता हूं, उसी बात को दातादयाल जी पहले ही कह चुके होते हैं। अब यह बात सब लोग नहीं समझते।

आगे सतपद सत्त तत्त्व प्रभु,
सत् में सन्त उजास ।

सत् का मतलब हस्ती, लेकिन यह आत्मिक हस्ती है। सत्लोक के अन्दर आत्मिक हस्ती है। उजास का मतलब है प्रकाश। हम सत्य पर पहुंच गए। मगर इसके आगे अलख, अगम और अनामी है।

अलख अगम राधास्वामी अनामी।

अब राधास्वामी को एक तरफ रख दो। जब हम प्रकाशमय सत्लोक के अन्दर गए तो यह जो सत् है, उस अनामी राधास्वामी का अ है। वह उसका आत्मिक स्थूल शरीर है पराब्रह्माण्डी। पराब्रह्माण्ड का आत्मिक शरीर है। ब्रह्माण्ड का तो था सुन्न, महासुन्न और भंवर गुफा,

लेकिन पराब्रह्माण्ड का जो स्थूल शरीर है वह आत्मिक सूक्ष्म है। उसमें भी स्थूलता है, लेकिन इतनी महीन स्थूलता है कि उसमें कोई भार नहीं होता। इसीलिए कहा जाता है कि सत्गुरु से प्रेम करते 2 जब तुम प्रकाश में सत्पुरुष से मिलोगे, तो कोई भार नहीं होगा। उस अवस्था में प्रेमी और प्रीतम एक हो जाते हैं अर्थात् दोपना नहीं रहता। कबीर साहब ने कहा है :—

कबीरा इश्क का माता दुई को दूर कर दिल से। अरे दोपने का भी भार है।

जो चलना राह नाजुक है,
हमन सिर बोझ भारी क्या?

हमारा असली रूप प्रेम इतना सूक्ष्म है कि जब सत्लोक में जाते हैं, तो गुरु का यही रूप प्रकाशमय दिखाई देगा, लेकिन उसके अन्दर कोई भार या बोझ नहीं होगा। यह तो हुआ सूक्ष्मतम 'अ' अर्थात् पराब्रह्माण्ड का ब्रह्मा। तुम्हारा अपना ही मन, तुम्हारी अपनी हस्ती ही सूक्ष्म से सूक्ष्म है। सत्तलोक के अन्दर तुम्हारा प्रीतम से मिलाप होता हैं, प्रेम होता है। लेकिन वहां प्रकाश है और प्रीतम दिखाई दे रहा है, इसलिए वह स्थूल है, मगर आत्मिक स्थूल है। इसके बाद अलख का दर्जा है। इसमें तुम्हारा ज्योतिर्मय सत्गुरु, सत्पुरुष दिखाई नहीं देता, क्योंकि वह सूक्ष्म है। अलख में प्रकाश कम और शब्द अधिक होता है। इसलिए अलख पराब्रह्माण्डी 'उ' है। इसके आगे अगम है। अगम के अन्दर तुम्हारा दोपना भी समाप्त हो जाता है। इसमें शब्द ही शब्द है। यह शब्द ऐसा होता है कि इसमें डूब कर तुम्हें पता ही नहीं चलता कि मैं कहां पर हूं। इसे

पराब्रह्माण्डी ॐ कहते हैं। जब तुम अभ्यास करते हो और शब्द में रहते हो, तब तक कालकरम नहीं होता। इसलिए कबीर साहब ने कहा है :—

जाप मरे अजपामरे,
अनहद भी मर जाये।
सुरत समानी शब्द में,
वाको काल न खाय ॥

जब चलते-चलते प्रकाश भी चला गया और शब्द के अन्दर मस्ती आ गई, 'वाको काल न खाय'। जब तक तुम शब्द की अवस्था में हो, तब तक तुम्हें समय का भी होश नहीं होता। वहां काल नहीं होता। जैसे नींद में काल नहीं होता, वैसे ही वह भी नींद है। परमदयाल जी महाराज ने इसे आत्मा की नींद कहा है। तो जब तक तुम आत्मा की नींद में हो, तब तक तुम काल से परे हो। जब तुम नीचे आओगे, तो फिर काल होगा। इसलिए यह भी मंजिल नहीं है। यह परा ॐ है। यह बड़ी ऊंची अवस्था है। किन्तु यह ऊंची अवस्था हमेशा बनी नहीं रहती, इसलिए साधक को जाग्रत अवस्था में पिन्डी और ब्रह्माण्डी ॐ का अनुभव होता रहता है। ब्रह्माण्डी पुरुष का अ उ और म अर्थात स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर पिन्डी ॐ के सदृश्य होता है।

यह ब्रह्माण्डी अ जगत् का ब्रह्मा है। इसके भी स्थूल अंग हैं अर्थात् आंखें भी हैं, कान भी हैं, हाथ पैर भी हैं। वेदों में कहते हैं कि पुरुष का हज़ारों आँखों वाला, हज़ारों कान वाला आदि 2 ब्रह्मा। उ विष्णु है, जो ब्रह्मा का

पोषण कर रहा है। इसे ब्रह्माण्डी मन कहते हैं। 'म' शिव है। वह ब्रह्माण्डी आत्मा है। इसका प्रकाश का शरीर है। इसे कारण शरीर कहते हैं। इस प्रकार हमारे तीन शरीर हैं। यह भी ॐ है। जाग्रत अवस्था हमारा स्थूल शरीर ब्रह्मा अर्थात् अ काम कर रहा होता है। जब स्वप्न में चले जाते हैं तो स्वप्न में हमारी विशुद्ध आत्मा है, जो शरीर से निकल कर मनोमय कोष में आ जाती हैं। स्वप्न में हमारा सूक्ष्म शरीर बाहर निकल जाता है, लेकिन हमारा सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के साथ एक तार से बंधा रहता है। इस तार को सूत्रात्मा कहते हैं। यह अ नहीं हैं उ है अर्थात् आत्मा है। स्वप्न के अन्दर जो हम देखते सुनते हैं, वह उ है। तो मन की आंखें और मन के कान है। जब आप गहरी नींद में जाते हैं, उस वक्त हमारी विशुद्ध आत्मा मन से निकल कर, कारण शरीर में, आत्मा में, आनन्द में चली जाती है। इसे सुषुप्ति की अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में कुछ दिखाई या सुनाई नहीं देता। कोई सुख-दुःख नहीं होता। कोई चेतना नहीं होती। क्योंकि आत्मा के अन्दर जब तुम्हारी सुरत चली गयी और आत्मा आनन्दमय है, इसलिए आनन्द का अनुभव होता है। यही शिव है। शिव आनन्दमय हैं। हमारा शिव तुम्हारी आत्मा है। तो अ ब्रह्मा, हमारा शरीर। उ विष्णु हमारा मन और म शिव हमारी आत्मा। लेकिन हम तो कुछ और चीज हैं।

मैंने आपको नीचे के दर्जे से लेकर अलख, अगम और अनामी तक बताया और बताया कि यह भी ॐ है लेकिन ॐ के ऊपर जो बिन्दु है, वह बिन्दु सबका आधार है।

अनामी राधास्वामी दयाल जिसको कहते हैं, वह इन तीनों से परे है। आज मुझे यह बात दातादयाल जी महाराज के आज के शब्द में मिली।

अलख अगम राधास्वामी अनामी,
सत्चित आनन्द रास ।

सत् चित् आनन्द तो सीधा ॐ है। देखो कितनी सच्ची बात आ गयी कि राधास्वामी सत् चित् आनन्द का आधार है। उसकी राशि है, उसका ख़ज़ाना है। सत् अलख अगम सतचित् आनन्द उसका ख़ज़ाना है राधा बामी। अब सोचो कि ॐ हुआ कि नहीं हुआ।

सर्वकला संग मुझ में समाने कैसे होऊं उदासा ॥

यह जो सत्गुरु का आखिरी रूप है, वह भी हमारे अन्दर है और बाहरी जो सत्गुरु बैठा है, वह उसे उस अवस्था तक पहुंचा देता है। सभी कलाएं, सभी शक्तियां तुम्हारे अन्दर मौजूद हैं। गुरु से प्रेम इसलिए करना है कि वह अन्दर बैठे हुए गुरु को जगा दे। प्रेम की पराकाष्ठा में तुम और गुरु एक हो जाते हो। इसलिए यह रास्ता प्रेम का है। यदि आपको पहले से ही प्रेम है, तो अभ्यास में भी वही आपको अनुभव होगा, जो सतगुरु से सच्चे प्रेम के अनुभव के बाद होता है। आज मैंने बहुत कुछ कह दिया।

सब को राधास्वामी।

नन्दू भाई की साखी

गुरु वंदना का अंग

तुम तो सूर्य प्रकाश गुरु,
हम खद्योत समान।
तुम्हरे चरण की जोति से,
हम प्रगटे जग आन ॥
तुम तो सिंधु अपार हो,
हम हैं बूंद के तुल।
तुम से तुम में प्रगट हुए,
तुम में रह मिल जुल ॥
तुम तरुवर, हम पक्षीजन,
तुम में करें कुलेल।
तुम्हरे बल को पाय कर,
नहीं किसी के दबेल ॥
हम चकोर तुम चंद्र गति,
छवि शोभा की खान।
इक टक चित निरखत रहें,
तजें मोह मद मान ॥
हम भौंरा तुम कमल दल,
देखि सुरंग सुवास।
तुम्हरी दया की आस धर,
जग से सदा निरास ॥

तुम तो आम की डार हो,
हम कोयल की भाव।
नाम तुम्हारा गायें नित,
जब का तजें कुदाव ॥
हम पपीहा तुम स्वाति जल,
स्वाति बूंद चित धार।
पी पी करते रात दिन,
चरणामृत आधार ॥
तुम ध्रुवपद तुम सत्य पद,
तुम सद्गति निरवान।
हम तुम्हरे आधीन हैं,
सदा तुम्हारा ध्यान ॥
हम मछली तुम महानद,
तुम्हरे अन्दर बास।
बिलगाये बिलगे नहीं,
बिलगउ त्यागे साँस ॥
हम सम तुम्हरे अधिक हैं,
तुम सम हमरे नांह।
सोच समझ मन आपने,
गही चरण की छांह ॥
ज्ञान मुक्ति मांगू नहीं,
नहिं धन कुल परिवार।
मौज करूं डारूं सकल,
तन मन तुम पर वार ॥
जिऊं तुम को सुमिरत जिऊं,
मरूं नाम चित राख।

जियन मरन तुम में मेरा,
पूर करो अभिलाख ॥
नहिं विद्या नहिं बुद्धि बल,
नहिं धन जग मरजाद ॥
जियत मस्त घूमत फिरत,
रहे तुम्हारी याद ॥
परमारथ ब्योहार में,
रहे न भेद अभेद ।
पद सरोज को निरख कर,
लखूं न भव भ्रम खेद ॥

मेंहदी सम मोहि पीसिए,
प्रेम बूंद छिड़काय ।
लाली अपनी दीजिए,
अपने चरण लगाय ॥
लाली पा कर लाल हूं,
लाल लाल में लाल ॥
तुम लालन के लाल गुरु,
मुझे भी कर दो लाल ॥
भिखमंगा तो पतित नित,
तुम गुरु पतित उधार ।
मुझ समान जो पतित है,
तुम पतित उधारन हार ॥
राधास्वामी दीन हित,
दीनन में मैं दीन ।
जल बिन मुझे संभालिए,
समझ नीर की मीन ॥

विद्या बुद्धि विवेक की, चरण कमल में खान।
दया महा गुरु कीजिए, दीजे शुभ मति ज्ञान॥
प्रेम भक्ति सद्गति सुगति, सब तुम्हरे आधीन।
दया दृष्टि गुरु कीजिए, चरण पड़ा जन दीन॥
खटक खटक सालत रहे, दुख दारूण अति सूल।
अपनी दया से काटिये, भव क्लेश का मूल॥
चंदन के ढिंग आय कर, सुधरे नीम पलास।
मैं आया तुमरी शरण में, कीजे अपना दास॥
चरण ओट में राखिये, शरणागत पहचान।
राधास्वामी सतगुरु, दीजे भक्ति दान॥

❖ ❖ ❖

बहता था भव धार में, ठौर ठिकाना नाँहि।
सतगुरु पार लगा दिए, पकड़ दास की बांह॥
मेरे अब कोई नहीं, एक गुरु की आस।
सुख दुःख जग के मिट गए, द्वंद की हटी निरास॥
शब्द योग की साधना, लागी सहज समाध।
सहज वृत्ति जब घट रहे, हट गये भव के व्याध॥
भौंरा लोभी कमल का, चन्द्र का लोभी चकोर।
मैं लोभी गुरु दरश का, चित्त न आवे ओर॥
निस दिन गुरु की चाह है, पल 2 गुरु का ध्यान।
छिन्न 2 गुरु का भजन है, गुरु मेरे जान और प्रान॥

❖ ❖ ❖

गुरु महिमा अति अगम है, गुरु का वार न पार।
जब देखूं गुरु दृष्टि में, गुरु हैं सब के सार॥

एक गुरु की आस कर, त्याग जगत का आस।
राधास्वामी चरण में, धार सदा विश्वास।।

गुरु आए इस जगत में, दीन जीव के काज।
अब तो तारे ही बनें, तुम्हें हमारी लाज।।
हम तो आप ही पतित हैं, तुम हो पतित उद्धार।
आय पड़े हम भव सिंधु, कीजे भव जल पार।।
शब्द जहाज़ चढ़ाय कर, सुरति निरत की डोर।
बेड़ा कीजै पार गुरु, निरख आपनी ओर।।
दुःख भंजन, मन रंजना, साज भक्ति का साज।
दीन दुखी को तारिये, संतों के सरताज।।
तुम तो समरथ सांईयां, सब जग के आधार।
साधु संग नित दीजिए, राधास्वामी दयार।।

गुरु दाता गुरु ज्ञाना गम, गुरु ज्ञान के रूप।
गुरु के चरण सरोज में, सूझे ज्ञान अनूप।।
गुरु विदेह, गुरु गुण रहित, गुरु सब के आधार।
गुरु की दया अपार से, सहज हो बेड़ा पार।।
गुरु समाने शिष्य में, ज्ञान भरा भरपूर।
सुरत-शब्द मेला भया, बाजे अनहद तूर।।
ढूंढे क्या तूं बावरे, गुरु का रूप निहार।
गुरु के चरण सरोज में, ज्ञान मुक्ति भण्डार।।

जो अद्वैत प्रकाश विभु, सगुण अगुण आधार।
सत चित आनन्द रूप वह, मन वाणी के पार॥
ताकि निश दिन वंदना, कोटि कोटि परनाम।
अलख अगम गति अमल अति, मोक्ष मुक्ति का धाम॥
सिंधु गँभीर अथह बहु, पार न पावे कोय।
लखि आवै जब साध संग गुरु की किरपा होय॥
रूप सरूप अरूप नित, गम पावे कोई संत।
अज्ञानी जाने नहीं, अति उतंत गुरु पंत॥
भीतर बाहर एक रस, सब विधि रहा समाय।
खुली दृष्टि से देखिए, जब गुरु होयं सहाय॥
एक अनेक अनादि अज, अलख अगाध अभेद।
गुरु मुख से कुछ पाइये, थाके ऋषि-मुनि वेद॥
सेवा पूजा वन्दना, नहिं कुछ जाने दास।
सब की आशा त्याग दी, धरि गुरु चरणन आस॥
रात दिवस विसरूं नहीं, जिभ्या रहे गुरु नाम।
राधास्वामी शरण में, कोटि कोटि परनाम॥

मासिक सन्देश

सत्संग परमसन्त सद्गुरु

हजूर मानव दयाल

डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज

मेरे अन्तरात्मस्वरूप, सद्गुरु रूप, परमप्रिय सत्संगी भाइयो और बहनों

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई।

22 प्रात:काल 4 बजे हम इन्दौर पहुंच गये। वहां पर आचार्य रामाबाई उनके सुपुत्र अखिलेश और उनके भाई श्री महेन्द्र गर्ग स्टेशन पर स्वागत के लिए मौजूद थे। वह मुझे श्री महेन्द्र गर्ग के घर ले गये। प्रात:काल ही कुछ सत्संगी मिलने के लिए आये। हम थोड़ी देर के लिए रामाबाई की मौसी श्रीमती आत्माबाई के घर पर गए, जहां पर उनके अन्य सम्बन्धी भी उपस्थित थे। संक्षेप वार्तालाप के बाद हम महेन्द्र के घर लौट आए। श्री महेन्द्र की पत्नी तथा उनके बच्चे हमेशा हमारी प्रेम से व श्रद्धा से सेवा किया करते हैं। दोपहर के खाने के पश्चात् कुछ विशेष व्यक्ति मिलने के लिए आए, जिनमें रामदत्त शर्मा, जो

इन्दौर में एक कारखाना चला रहे हैं, भी आए। रामदत्त शर्मा मोदी नगर के आचार्य श्री एस.डी. शर्मा के भाई हैं। अपनी श्रद्धा तथा विश्वास के कारण यह अपने व्यापार में सफलता प्राप्त कर रहे हैं। मैं बार-बार 'श्रद्धा' और 'विश्वास' शब्दों का प्रयोग इसलिए कर रहा हूं कि हर एक सत्संगी और श्रद्धालु जिसमें अगाध श्रद्धा और अटूट विश्वास है, इस दुःखमय संसार में रहते हुए भी आनन्दमय जीवन व्यतीत करता हुआ पूर्णता का अनुभव कर सकता है। मेरे परमप्रिय सत्संगियो! आपको क्षणमात्र के लिए भी इस शब्द को विस्मृत नहीं करना चाहिए :--

साईं के दरबार में,
कमी काहू की नाहिं।
बन्दा मौज न पावई,
चूक चाकरी माहिं ॥

अर्थात् सद्गुरु से अगाध प्रेम करने वाले सत्संगी को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और आत्मिक अपूर्णता कभी महसूस नहीं हो सकती। जब कभी भी उन्हें विफलता, दुःख या शोक का अनुभव होता है, तो वह केवल इसीलिए होता है कि सद्गुरु की प्रेम से ओत-प्रोत सेवा में त्रुटि हो जाती है। इस चर्चा से यह ज़ाहिर है कि श्रद्धा और विश्वास केवल प्रेम के कारण दृढ़ होते हैं और श्रद्धा, विश्वास, सेवा या अभ्यास का उद्देश्य पराप्रेम औस परा-भक्ति की अवस्था को प्राप्त करना मात्र है।

हम करीब २ बजे दोपहर कार में उज्जैन के लिए रवाना हो गये। हमें कम से कम एक बजे रवाना होना चाहिए था, क्योंकि हमें रास्ते में कचनारिया गांव में

रुकना था, जहां श्री ईश्वरदास, श्रीमती रतनबाई के सहयोग से राधास्वामी केन्द्र चला रहे थे। आचार्या रामाबाई ने रतन बाई को कह दिया था कि वह 2 बजे तक हमारी प्रतीक्षा करें और यदि हम उस समय तक वहां नहीं पहुंच सके, तो उसे उज्जैन के लिए रवाना हो जाना चाहिए। जब हमें कचनारिया पहुंचने से पहले ही करीब 3 बजे गए, तो सभी ने यही कहा कि हमें कच्चा सड़क द्वारा कचनारिया जाने में समय नष्ट नहीं करना चाहिए और हमें सीधा उज्जैन रवाना हो जाना चाहिए। मुझे श्रीमती रतनबाई के सच्चे प्रेम के कारण यह विश्वास था कि वह 3 बजे के बाद तक भी हमारी प्रतीक्षा कर रही होगी। वास्तव में ऐसा ही हुआ। जब हम श्रीमती रतनबाई के घर पहुंचे, तो हमें पता चला कि वह छोटे मार्ग द्वारा मुख्य सड़क पर पहुंच कर बस की प्रतीक्षा कर रही थीं। उनके सुपुत्र ने तुरन्त मोटर साइकिल उठाया और इसके पहले कि रतनबाई उज्जैन की बस पकड़ लेती, मुख्य सड़क पर पहुंच गया। श्रीमती रतनबाई प्रेम और आनन्द से गद्‌गद् होती हुई अपने घर पहुंचीं। उन्होंने अपनी श्रद्धा के अनुसार हमारा स्वागत किया और आरती आदि के पश्चात् हमारे साथ उज्जैन चलीं। उज्जैन में सत्संग के स्थल अग्रवाल धर्मशाला में सत्संगियों की भीड़ लगी हुई थी। उज्जैन, तराना, बड़ौत, इटावा और आसपास के गांवों से आए हुए श्रद्धापूर्ण सत्संगी बड़े उत्साह से हमारे सत्संग-स्थल पर पहुंचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरे कार से उतरते ही इन श्रद्धालुओं की भीड़ स्वागत के लिए टूट पड़ी। मैं उनके प्रेम से अभिभूत हो गया और मैंने महसूस किया कि

ऐसे भोले-भाले सत्संगियों की सेवा और उनका सच्चा मार्ग-दर्शन मेरा परमकर्त्तव्य है। यह बात परमदयाल जी महाराज ने मुझे अपने पिट्सबर्ग मर्सी अस्पताल के अन्तिम सत्संग में कही थी। उन्होंने आदेश दिया था, "दयाल शर्मा! तेरी वर्तमान आध्यात्मिक अवस्था जीवनमुक्ति की है। तुम्हारे में 'मैं' नहीं है, केवल तू ही तू है। तेरी वह अवस्था भी आ जायेगी, जो इस समय मेरी अवस्था है और जिसमें मैं यह अनुभव कर रहा हूं :—

"माला फेरूं, न हर भजूं,
मुख से कहूं न राम।
मेरा राम मुझ को भजे,
तब पाऊं विश्राम॥"

उस समय 'मैं' 'तू' का झगड़ा समाप्त हो जायेगा, किन्तु यह अवस्था तुम्हें तभी प्राप्त होगी, जब तुम सत्संग द्वारा अपना अनुभव बाँट कर सत्संगियों की महान सेवा करोगे। इसलिए मेरे परम प्रिय सद्गुरु रूप सत्संगियो! मैंने आपको उज्जैन के सत्संगियों की श्रद्धा और प्रेम के सम्बन्ध में उपरोक्त व्याख्या दी है।

करीब एक घन्टे तक धर्मशाला में सत्संगियों से प्रेम-पूर्वक वार्तालाप और उनकी समस्याओं को सुलझाने के उपाय बताने के बाद हम आचार्या रामाबाई के घर पहुंचे, जहां पर कुछ सत्संगी और आचार्य सूर्य नरायण भट्ट भी मौजूद थे। रात्रि के भोजन के बाद भी करीब 11 बजे तक मैं सबसे वार्तालाप करता रहा। धर्मशाला में

रहने का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध था। मेरा कमरा अलग था। सारा दिन मैं धर्मशाला में ही रहता था, किन्तु रात्रि को विश्राम के लिए आचार्या रामाबाई के घर इसलिए आ जाता था, क्योंकि मैं कुछ दिन पहले अपचरोग में ग्रस्त था। मैं हमेशा यही चाहता हूं कि बाहर से आने वाले सभी सत्संगी और आचार्य सत्संग स्थल पर ही रहें। इसमें ना हि केवल सत्संगियों का परस्पर प्रेम बढ़ता है, बल्कि उनमें सत्संग के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने से सच्चा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। 22, 23, 24 को सत्संग का सिलसिला चलता रहा। मैं रोज़ाना प्रात:काल श्री महेन्द्र गर्ग के साथ तथा रामाबाई, आचार्य श्री शब्दानन्द तथा साधना के साथ मीलों लम्बी सैर करने जाता था। चलने के दौरान में एक स्वभाविक सत्संग हो जाता था। कभी हम मंगलनाथ की तरफ जाते थे, जहां रास्ते में ऋषि संदीपायन का आश्रम था और जहां पर पूर्णेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने अपने सहपाठी सुदामा के साथ शिक्षा प्राप्त की थी। भगवान श्री कृष्ण और सुदामा का गुरु-शिष्य का सम्बन्ध एवं सद्गुरु और सत्संगी का सम्बन्ध हमें यह शिक्षा देता है कि गुरु से सच्चा प्रेम, उस श्रद्धा और विश्वास को पुष्ट करता है, जिससे मनुष्य भवसागर से पार हो जाता है। कभी हम शहर से दूर उस स्टेडियम की तरफ जाते थे, जहां अन्तर्राष्ट्रीय क्रिकेट के मैच हुआ करते हैं। क्रिकेट का खेल भी एक प्रकार की समाधि है। इसमें निष्काम कर्मयोग का अनुभव होता है।

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने निष्काम कर्मयोग को सन्यास एवं ज्ञान योग से श्रेष्ठ बताया है, क्योंकि इस योग में भक्त पूर्णतया सभी सांसारिक इच्छाओं से मन मोड़ कर

केवल अपने इष्ट को परम लक्ष्य मानकर कर्म में रत हो हो जाता है। क्रिकेट के खेल में भी खिलाड़ी अपना सारा ध्यान उस गेंद ही की तरफ लगाता है, जिसे वह अपने बल्ले से दूर तक पहुंचा देता है और चौका या छक्का प्राप्त करके लोगों की तालियां सुनकर सन्तुष्ट हो जाता है। यदि खेल खेलते समय वह अपना ध्यान कर्म की तल्लीनता से हटाकर इस कल्पना में लगादे कि उसको चौका या छक्का प्राप्त करके किस प्रकार प्रशंसा द्वारा आनन्द प्राप्त होगा, तो वह कभी भी अपने कर्म में सफल नहीं हो सकता। निष्काम कर्मयोग दो उद्देश्यों को लेकर फलीभूत हो सकता है। योगी एवं भक्त या तो कर्म को दूसरों की भलाई में लगाकर आत्मशुद्धि के लिए करे, जिसमें वह मन, कर्म और वचन से शिव संकल्प के उद्देश्य को प्राप्त करे। अथवा अपने सभी कर्मों को अपने इष्ट एवं सद्गुरु को समर्पित कर के पराभक्ति और पर-प्रेम द्वारा जीवनमुक्ति और विदेह की अवस्था का अनुभव करे। इसी सच्चाई को ही परमदयाल जी महाराज ने अपने अन्तिम सत्संग में मुझे अपने प्रेम भरे शब्दों में बताया था, जिसका मैंने ऊपर उल्लेख कर दिया है।

24 मार्च को प्रातःकाल आशीर्वाद सत्संग हुआ, जिसमें सत्संगियों ने भक्ति और प्रेम के रस का अनुभव किया। दोपहर को भोजन के पश्चात् लंगर में काम करने वाले कर्मचारियों को विशेष प्रसाद दिया गया और हम करीब 2 बजे श्री चरनजीत सिंह, कु. निर्मला शर्मा और श्री सुन्दरदास के साथ जीप द्वारा भोपाल होते हुए रात को 10 बजे श्री चरनजीत सिंह के निवासस्थान पर इटारसी

पहुंचे। उस समय भी बहुत से सत्संगी वहां पर मौजूद थे और हम बहुत देर तक उनसे बात-चीत करते रहे। 25 मार्च सायंकाल देवी के मन्दिर में बहुत ही भव्य और विशाल सत्संग आयोजित था। शहर में जगह २ पर पहले से ही इस सत्संग की सूचना इश्तहारों द्वारा और कपड़ों पर लिखे हुए संदेशों द्वारा पहुंचा दी गयी थी। सत्संग में हजारों की संख्या में सत्संगी और गैर सत्संगी सम्मिलित हुए। शहर के बुद्धिवादी और प्रतिष्ठित व्यक्ति भी मौजूद थे। यह सत्संग 25 और 26 मार्च को आयोजित हुआ और इसके प्रभाव से बहुत लोगों ते नामदान लिया, जिसमें मन्दिर के पुजारी भी शामिल थे।

29 मार्च को हम दोपहर के भोजन के लिए और सैकड़ों सिन्धी सत्संगियों से मिलने के लिए श्री सुन्दरदास के निवासस्थान पर गए। वहां पर भी कुछ नये लोगों ने नामदान लिया। हम 27 और 28 के बीच की रात्रि आगरा होते हुए 29 मार्च के बजाय 30 मार्च प्रातःकाल साढ़े सात बजे होशियारपुर पहुंच गए। आपको यह पहले से विदित है कि भाग्य माता जी का अन्तिम संस्कार हुआ। उन्होंने अपने सारे जीवन को परमदयाल जी की आज्ञा के अनुसार सत्संगियों की सेवा में और मेरी सेवा में लगा दिया और अन्त में उस गति को प्राप्त किया, जो सन्तों को भी दुर्लभ होती है। हमें चाहिए कि हम उनके इस दिव्य जीवन और उनकी कुर्बानी से प्रेरणा लेकर मानवता के मिशन पर चलते रहें, ताकि भाग्य माता जी के और परमदयाल जी के द्वारा

प्रदर्शित लक्ष्य को हम प्राप्त करें।

इस मासिक सन्देश में यहां तक की सत्संग दौरे की और मानवता मन्दिर की गतिविधियों की सूचना काफी है। वैसाखी के सन्त सम्मेलन और उसके पश्चात् 12 मई तक मानवता मन्दिर की गतिविधियों की व्याख्या और सूचना अगले मासिक सन्देश में दी जायेगी। इन शब्दों के साथ मैं आप सब को इस महीने की सद्भावना भेजता हूं और सच्चे दिल से आशीर्वाद देता हूं कि आप स्वस्थ, सुखी और शान्तिमय जीवन व्यतीत करें।

सबको राधास्वामी।

आपका फ़कीरमय
मानव

राधास्वामी !

परम सन्त परम दयाल पण्डित फ़कीर चन्द जी महाराज का सत्संग

दिनांक 21-9-1980

(गतांक से आगे)

एक और बुद्धि ज्ञान मैं यह देता हूं कि ऐ इन्सान तू ग़ाफ़िल है। किसी सत्गुरु के दरबार में जा, वहां सौदा मिलता है। किस बात का! बुद्धि और ज्ञान का। पढ़ो इस कड़ी को :--

"चल सतगुरु की हाट ज्ञान बुद्धि लाइये,
कीजे साहब से हेत परम पद पाइये।"

मैं ज्ञान बुद्धि सोचता हूं---तूने अपने आपको, बेहया सन्त सद्गुरु वक्त कह दिया। तू क्या कह सकता है? मैं सच्ची बात बताए जाता हूं कि जब तक इन्सान अपनी औलाद को औलाद के ख़याल से पैदा नहीं करेगा (और यह नहीं समझेगा कि) माता जिस किस्म का ख़याल रखेगी उस किसम का असर बच्चे पर पड़ेगा, तब तक यह उम्मीद रखना कि तुम्हारी खानगी (घरेलू) ज़िन्दगी ठीक रह सकेगी,

यह नामुमकिन है। जो चाहे मरज़ी कर लो, गवर्नमैंट करले, किताबें लिख लो, जो चाहे मरज़ी करो, यह नामुमकिन है, कभी नहीं होगा। दूसरा यह है कि जिस किसम का संसार बच्चे को पहले मिलता है, जिस माहौल में वह पड़ता है, रहता है, उसका संस्कार पड़ता है। हमारे यहां कहा जाता है :--बड़ा चंचल हो, "ओए तैनूं किहड़ी दाई ने धोया सी" जब बच्चा पैदा होता है. उसका दिमाग साफ सलेट होती है। जो आदमी उसको पहले हाथ लगाता है, उसका असर उस पर पड़ता है। मैं कोई बात ऐसी नहीं कहता जो मेरी आज़माई हुई न हो। मैं फिरोज़पुर में था मुलाज़म। मेरे साथ एक सरदार दलीप सिंह एल. डी. सी. था। उसका मकान मेरे (मकान के) साथ था। तीन आदमी हम रहते थे। उनके यहां लड़की हुई। वह 21 दिन तक रोती रही तो समझदार दलीपसिंह मेरे पास आया। उसने कहा, "मास्टर जी मैं क्या करूं ?" मैंने कहा, "भाई डाक्टर को दिखा दो।" डाक्टर ने कहा इसको कोई बीमारी नहीं है। मैंने सोचा (और कहा) बुरा तो नहीं मानोगे ? (उसने) कहा ना (नहीं)। मैंने कहा तेरी बीवी बहुत फूहड़ है। हर वक्त रोती रहती है। हो सकता है जब वह दुःख में (रही) हो। तुम उसके पास गए होओ (तो) वीर्य ठहर गया हो, तब (ही) रोती होगी (बच्ची)। या तुम्हारी बीवी की तुम्हार मां से नहीं बनती, तब झगड़ा होता हो। मां ने उसको हाथ लगाया हो (तो) वह रोती हो। यह ज्ञात करो ! वह आया। मैं भी और वह भी एक ही दफ्तर में काम करते थे। उसने कहा, "जी हमने जो दाई रखी थी उसका सगा भाई दो दिन पहले

. . . या (था) वह सयापे (मातम) में बैठी हुई थी तो उसको बुलाया (था)। उसी ने आके लड़की को पहले हाथ लगाया (था)। क्योंकि वह लड़की खुद ग़म में थी इस वास्ते उसका असर बच्ची पर पड़ा।" मैंने कहा, "फूल ले आओ।" मैंने फूलों का प्रसाद कर दिया। मैंने कहा इस 'लड़की' को सारा दिन (इन) फूलों में रखो। उस 'बच्ची' का रोना बन्द हो गया। ये मेरी जिन्दगी के तजुरबात हैं जोकि (हालाँकि) इन पर अमल करना मुश्किल है। मगर मेरे ज़िम्मे डयूटी थी। मैं सच्चा ज्ञान दिए जाता हूं, कोई सुने या न सुने। पाँच पुकार उठाए, मुझे क्या ?

दूसरे जब बच्चा पैदा होता हैं जिस माहौल में रहता है, (उसका असर उस पर पड़ता है) मैं फिरोज़पुर में था तो लोहड़ी (मकर संक्रान्ति से एक दिन पहले) का दिन आया। वहाँ (आस पास के) मकानों वाले चन्द आदमी मेरे पास आए। कहने लगे, "महाराज आज लोहड़ी है। यह (बच्चे) बहुत शरारतें करते हैं, झगड़ा करते हैं एक दूसरे के साथ। आप इन्हें कुछ समझाएं।" मैंने कहा, "भाई मैं इनको तो नहीं समझाना चाहता। मैं आपको कहना चाहता हूं। तुम्हारा भाई के साथ झगड़ा होता है। तुम घर में बैठ कर मियां बीवी अपने सगे भाई के बरखिलाफ़ शिकायतें करते रहते हो। उनका असर इन बच्चों पर पड़ता है। फिर ये बच्चे ज़रूर आपस में झगड़ा करेंगे और शरारतें करेंगे। मैं बच्चों को इल्ज़ाम नहीं देता, तुम को इल्ज़ाम देता हूं। अगर हम चाहते हैं

कि हमारी औलाद नेक बने, दातादयाल (जैसी) बने तो हमें अपनी रहनी (व्यवहार ठीक करनी चाहिए। मां बाप हर रोज़ झगड़ा करते हैं, रन्न-ख़सम की लड़ाई रहती है। बेटियां हैं, बेटे हैं, उस वक्त तो नहीं बोलते मगर उनके दिमाग़ पर असर [पड़] जाता है। जब बड़े होते हैं तो वे वैसा ही काम करते हैं। मैंने अपने आप को सन्त सद्गुरु वक्त कहा है। मैं अपनी ड्यूटी समझता हूं। मैंने जो इलम अन्दर में, मैंने हासिल किया है, उसके आधार पर कहता हूं। किसी की मरज़ी हो सुने, किसी की मरज़ी हो न सुने, मैं इसकी परवाह नहीं करता तो सत् ज्ञान मैं क्या देना चाहता हूं। वह यह है कि औलाद को औलाद के ख़याल से पैदा करो।

माता के जब बच्चा पेट में हो तो जैसा वह ख़याल रचेगी, बच्चा वैसा ही होगा स्त्री के आठवाँ महीना होता है, सातवां होता है, छेवां होता है, वे भोग करते रहते हैं। उनमें काम आतुरता [पैशन] होता है। तुम कैसे कह सकते हो। अभिमन्यु चक्र व्यूह खोलने भेदने का ज्ञान पेट में रहकर संस्कार ले सकता है, तो जब सातवें आठवें महीने में स्त्री पुरुष भोग करते रहते हैं तो मां कामातुर होती है तो बच्चे में काम क्यों न आएगा? तुम लाख कोशिश कर लो, वह वक्त से पहले कामी हो जाएगा या अपना वीर्य जाया [नष्ट] करेगा या कोई ख़राबी करेगा। तुम उसको रोक नहीं सकते। जो मरज़ी चाहे कर लो, इसका कोई इलाज़ नहीं है। इसका इलाज़ इतना ही है कि उनको सत्संग दिया जाए। पहले तो मां बाप को अपनी ज़िन्दगी को प्रेक्टिकल बनाना चाहिए।

बाप शराब पीता है और फिर उसके बच्चे हैं। फिर वह यह उम्मीद करे कि वे भलेमानस बन जाएंगे। मैं नहीं मानता। ना! मेरा भाई था राए साहब कुन्दन लाल। उस का बड़ा लड़का मेरे पास पढ़ता था। उसने क्या करना, कोठे पर, रज़ाई पर कपड़ा ऐसे दे जाना जैसे पता लगे कि यह सोया हुआ है। उसने कोठे से छालांग मारनी, सिनेमे चले जाना। मैं बड़ा तंग आया। मैंने भाई को लिखा, यह मेरे काबू में नहीं आता। तो उसने लिखा, "गुरु बना हुआ है। लोगों को ठीक करता है, इसको ठीक नहीं कर सकता? तो मैंने उसको जवाब दिया कि यह बात ठीक है। मैंने उसको लिखा कि जब यह बच्चा पेट में था बग़दाद सिनेमा तुम और तुम्हारी बीवी बगल में हाथ डाले देखने जाते थे कि नहीं जाते थे? यह मैं आपको कोई ऐसी बात नहीं कहता कि मैंने जिसको आज़माया हुआ न हो। मैंने एक लड़का पैदा किया। खुदरी औलाद मैंने पैदा नहीं की। आज तक उस बच्चे से माज़रा तो क्या, बचपन से लेकर आज तक 'ओए' कहने का मौका नहीं उसने दिया। इतना ताबयादार है कि मेरी रिक्शा पर नहीं बैठता। मेरा महाराज [मेरा रसोइया] रोटी देता है मेज़ पर। जूठे वर्तन उसको नहीं उठाने देता। ये मेरी तजरुबा की हुई बातें हैं। क्योंकि मेरे जिम्मे ड्यूटी थी और मैं अपने आपको, सन्त सद्गुरु वक्त बड़े भरे ऐलान कहता हूं और कह देता हूं कि जब तक इन्सान इन उसूलों को फालो नहीं करेगा, वह शांति, गृहस्थ के जीवन में हासिल नहीं कर सकता। मुल्क के लीडर हैं हाकम हैं, जो प्राईम मिनिस्टर, चीफ़ मिनिस्टर हैं, उनके अपने घरों में झगड़ा है। ये लोग जो एम.एल.ए., एम. पी. बैठते है, ये आपस में द्वेष रखते

हैं, वुग्ज़, दुश्मनी, कीचड़ें उछालते हैं। फिर ये उम्मीद करें कि इनकी पब्लिक आपस में इत्तहाद [एकता] करदें। इनका बाप भी नहीं कर सकता जो चाहे मरज़ी कर लो। जब तक रूट काज़ न कटे। तो क्या करना चाहिए? इस वास्ते पिओंद लगानी चाहिए। पिओंद है सत्संग। मगर सत्संग भी उनका होना चाहिए जो खुद आमिल हैं। ये महात्मा जो यह कहते हैं कि नाम ले जाओ, अन्त समय हम तुम को ले जाएंगे, कौन जाता है, लेने के लिए? रोज़ मरते हैं लोग।

कोई कहता है बाबा आया हवाई जहाज़ लेकर, कोई कहता है बाबा आया पालकी लेकर, कोई कहता है घोड़ा ले गया। मेरे तो बाप को भी पता नहीं होता कौन मर गया। अगर मैं इस बात को छिपा कर गरज़ रखता हूं, सत्संग कराता हूं कि लोग मेरे जाल में फंसें और पैसे देते रहें, तो मेरे सत्संग करने वालों पर क्या असर पड़गा? क्या पिओंद लगेगी? उसको क्या पिओंद लगेगी, यह बताओ। मैं तो आप कॅरप्ट हूं। मेरे अन्दर में चार सौ बीस है, हेरा फेरी है, धोखा है, फ़रेब है और ज़ाहिरा तौर पर गुरु बन के लोगों को नाम देता हूं और प्रचार करता हूं तो मेरा (कहना) क्या असर करेगा दूसरों के ऊपर? जो आदमी ऐसे इन्सान का ध्यान करेंगे वे कभी शान्ति या मंज़िले मक़सूद पर नहीं पहुंच सकते, जो मरज़ी चाहे कर लें। मैंने एक दफ़ा यहां कहा था कि जो आदमी कृष्ण का ध्यान करने वाले हैं वे अपने कामाहंकार को भी रोक नहीं सकते। क्यों? उनके दिमाग में कृष्ण वह है जिसने रासलीला रचाई थी और इतनी रानियां

की थीं। वह काम को कैसे रोकेगा ? जो आदमी महात्मा गांधी को इष्ट बनाएगा, वह दुनिया में शान्ति ला नहीं सकता। क्यों ? उसके दिल में महात्मागांधी की वह तस्वीर है जिसने हड़तालें करवाई थीं। और यह क्या था ? आप देख रहे हैं ना क्या बनाया था। जिसका जैसा आईडियल (आदर्श) है वह वैसा काम करेगा। मुसलमान हैं। हज़रत मुहम्मद को पूजते हैं। तुम लाख कोशिश करो, जब मौक़ा आएगा वह तलवार उठाएगा। यह है साईकालोजी [मानसिकता]। जो जिसका ध्यान करता है, वैसे ही संस्कार उसमें आते हैं।

तो मैं क्या ज्ञान देना चाहता हूं ? हालांकि मैं जानता हूं कि मेरे ज्ञान का कोई फ़ायदा नहीं है। मगर मैं अपना कर्म भोगता हूं। बताए जाता हूं। शायद आठ दस बारह साल के बाद तबाही आएगी मुल्क में। बहुत सी आबादी कम हो जाएगी। फिर शायद लोग इस [विचार की] तरफ़ आएं और सोचें कि कोई आदमी आया था, कह गया था। कोई नई चीज़ नहीं मैं कहता। यह सारी सनातन धर्म की तालीम है। मगर मेरा तर्ज़बयान और है। तो फिर क्या हुआ ? क्या ज्ञान देना चाहता हूं ? पढ़ो इस कड़ी [पद] को :—

"चल सत्गुरु की हाट,
ज्ञान बुद्धि लाइये,

कीजे साहब सों हेत,
परम पद पाइये ॥"

तो मैंने अपनी ड्यूटी कर दी तुमको गृहस्थ के जीवन का हाल बता दिया।

[क्रमशः]

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फकीरधाम, सरड़ डोगरी, बरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश

पूज्या भाग्य माता जी का पत्र अपने देवर श्री महाराज कृष्ण शर्मा जी के नाम।

मानवता मंदिर,
होशियारपुर।
जून 12, 1989

मेरे परम प्रिय महाराज कृष्ण,

राधास्वामी। सदा सुखी रहो।

आप का प्यार भरा पत्र मिला। सदा की तरह, उसने आनन्द और शान्ति प्रदान की। भय्या मेरे! आप, महाराज जी तथा अनेक भोले-भाले सत्संगी जब मुझे इतना चाहते हैं, तो मैं जल्दी मरूंगी नहीं। मरता तो आदमी तब है, जब उसके जीवन का काई लक्ष्य नहीं रहता, और लोग उसे चाहते नहीं।

जब दूर - दूर से लोगों के टेलीफोन, पत्र तथा लोग स्वयं मुझे मिलने होशियारपुर आए, तो मेरी आंखों में आंसू आ गए। मुझे बीमारियों के कारण एक बार जीवन से विरक्ति-सी हो गई थी। परन्तु आप सब का प्रेम देख कर एक बार जीने का फिर उत्साह मिला। ऐसा लगा जैसे मुझे अपने लक्ष्य के लिए अभी जीना चाहिए। महाराज कृष्ण! सच कहती हूं, यदि भगवान मुझे तीन लोकों का राज्य भी दे दे, तो उसे इस प्रेम के आगे ठुकरा दूंगी। महाराज जी ने जो मेरी सेवा की, समय २ पर दवाई और

सान्तना दी, उसके आभार स्वरूप मैं उन्हें क्या दे सकती हूं ? आप भगवान के प्यारे हो, भगवान आपकी प्रार्थना सुनता है। भैया, आप अपने भगवान से कहो कि यदि मुझे ज़िन्दा रखना चाहता है तो कम से कम मुझे अपाहिज न बनाए। वैसे तो मैं दिन-रात मेहनत करके "मानव मन्दिर" के लिए इतना Material इकट्ठा करके छोड़ जाना चाहती हूं कि मेरे मरने के बाद भी मैग्ज़ीन दस साल तक ठीक तरह छपता रहे। न जाने मुझे 'मानव परिवार' से इतना मोह क्यों हो गया है ? इस मोह के कारण शायद मुझे कई बार जन्म लेना पड़ेगा। वैसे भी, मुझे नीरस मुक्ति नहीं चाहिए। भैया, यदि ऐसा निःस्वार्थ प्रेम आप का, महाराज जी का, तथा लाखों सत्संगियों का मिलता रहे तो मैं बार-बार जन्म लेती रहूंगी। मुझे मुक्ति की न तो ख़्वाहिश है, और न ही शायद मैं इसकी अधिकारिणी हूं। यदि होती भी फिर भी मुक्ति नहीं मांगती।

हां भैया ! चण्डीगढ़ में रुक कर मैंने भारत के सबसे बड़े डाक्टर को दिखाया। उन्होंने बताया कि आपरेशन बहुत ज़रूरी है। अभी तो कमजोरी बहुत है। मैं ठीक तरह से उठ-बैठ भी नहीं सकती। मैंने फैसला किया है कि अगस्त में मैं यह आपरेशन अमेरिका में ही कराऊंगी, क्योंकि वहां की medical aid बहुत बढ़िया है। फिर वहाँ मेरा insurance भी है, पैसे भी नहीं लगगे। आठ साल से मेरी insurance का 800/-रुपया महीना, महाराज जी की पेन्शन से, insurance वाले काट रहे हैं। मेरा अधिकार है कि मैं वहां आपरेशन कराऊं। यह मेरी अनधिकार चेष्टा नहीं है।

हस्पताल में मेरा जो 4000/- रु. खर्च हुआ, सोचती

हूं, यदि वह रुपया जयपुर के काम आता तो कितना अच्छा होता! मुझे अपने ऊपर खर्च करना बहुत बुरा लगता है।

मैं 24 जुलाई को महाराज श्री के साथ जयपुर आने की कोशिश करूंगी। आप गोलछा जी को मिल कर फर्निचर तथा पंखे की बात कर लीजिए। मैं आपको कुछ पैसे जुलाई में ज़रूर दे जाऊंगी। काम पूरा करा लीजिएगा। मालिक सब ठीक करेंगे। आपको मेरी सौगंध, आपरेशन जल्दी करवा लीजिए। शरीर को दुःख देना भी पाप है। सब को मेरा आशीर्वाद।

आपकी भाभी
भाग्य शर्मा

मैं जानती हूं कि आप मेरे लिए रोज़ प्रार्थना करते है; मुझे बहुत प्यार करते हैं। मेरी कमला भी मुझे बहुत प्यार करती थी। भैया, इस प्रेम के आगे तो भगवान को भी झुकना पड़ता है।

पूज्या माता भाग्य शर्मा जी का पत्र श्री महाराज कृष्ण जी को

मानवता मन्दिर,
होशियारपुर।
मार्च, 1993

प्रिय महाराज कृष्ण,

जय श्री कृष्ण व राधास्वामी।

राम सख़्त बीमार हो गया था। death bed पर था। हम उसे देखने फ़रीदाबाद गए और उसकी शोचनीय हालत देख कर उसे अपनी कार में यहां ले आए। उसके tests हो रहे हैं। फिर इलाज जारी होगा। देखें क्या होता है उसका!

जब हम जज साहब के घर दिल्ली गए तो दिल को दहला देने वाली खबर मिली कि प्यारे घनश्याम जी के दामाद का देहान्त हो गया है। वाह भय्या! आपने इतनी भयंकर घटना के विषय में हमें लिखा तक नहीं! आपने शायद यही सोचा होगा कि इस घटना के बारे में सुन कर मेरा जी दहल जाएगा। लेकिन भय्या! मैंने तो जिन्दगी भोग ली है; बुढ़ापा आ गया है। एक न एक दिन तो जाना ही है। जब अपने नन्हें-मुन्ने बच्चे ही चले जा रहे हैं तो मेरा जीवन ऐसा कौन सा कीमती है! 10 जनवरी को हमारे एक धर्म-पुत्र चालीस वर्षीय त्रिलोक शर्मा की भी

मृत्यु कार-दुर्घटना में हो गई। मेरा यह महादानी बेटा खास कर मेरा बहुत ध्यान रखता था। मन्दिर को कम से कम तीस हजार रुपए हर साल देता था। बगैर कुछ कहे चुपचाप चला गया। अब न जाने राम का भी क्या होगा! जानती नहीं। सचमुच ही मालिक बहुत ही निर्दयी है। दया का नाम नहीं उसमें। क्यों बनाई दुनिया उसने? क्यों ?

परम पूज्या माता भाग्य शर्मा जी का पत्र घनश्याम जी को

होशियारपुर।
मार्च 8, 1993

प्रिय घनश्याम,

राधास्वामी।

राम बहुत बीमार था; उसके बचने की उम्मीद भी नहीं थी। हम फ़रीदाबाद जा कर उसे यहां ले आए हैं इलाज के लिए। जज साहब के घर पर जब हम गए, तो दिल को दहलाने वाली खबर मिली कि आपके प्रिय दामाद का दुर्घटना में अन्त हो गया। आपने हमें सूचना तक नहीं दी! ऐसा क्यों किया घनश्याम तुमने ?

घनश्याम, मेरी कलम में ताक़त नहीं कि मैं दो शब्द लिख कर तुम्हें, तुम्हारे परिवार तथा प्रिय बेटो को सान्त्वना दे सकूं। भग्या, मालिक इतना निर्दयी क्यों है? भक्तों

कीइतनी बड़ी परीक्षा वह क्यों लेता है ? क्यों ? बड़े बड़े महात्माओं, सत्संगयों तथा सन्तों को भी दुःख झेलने पड़ते हैं । क्यों प्यारे घनश्याम ? क्यों ? मालिक ज़ालिम निर्दयी है न !

समझ में नहीं आता कि तुम्हें क्या लिखूं ? कैसे समझाऊं कि तुम क्या करो ? एक बात का ध्यान रखना कि नन्हीं बेटी को तथा उसकी मां को सान्त्वना देना बहुत ही ज़रूरी है। तुम तो समझदार हो, सहनशील हो। परन्तु औरतें बहुत कमजोर दिल होती हैं। उनको ढाढ़स बंधाना तुम्हारा कर्तव्य है। हम 18 मार्च को जयपुर आ रहे हैं। आप सब को मिलेंगे। उस ज़ालिम मालिक से दुआ है कि वह आपको इस सदमें को सहन करने की शक्ति दे।

आपकी भाग्य शर्मा

परमसंत सद्गुरु हज़ूर मानवदयाल जी महाराज का पत्र घनश्याम जी को

मेरे परम प्रिय आत्मांश घनश्याम,

राधास्वामी

आशीर्वाद ।

आपके जवाई साहब की आकस्मिक मृत्यु की दुःखद सूचना मिली। यह एक प्रारब्ध कर्म है जो अवतारों और सन्तों को भी सहन करना पड़ता है। मैं दिवंगत आत्मा की परमशान्ति की कामना करता हूं । धैर्य रखो। शेष 18 मार्च को जयपुर में मिलने पर। सारे परिवार को सान्त्वना, आशीर्वाद और राधास्वामी।

तुम्हारा फ़कीरमय
मानव

परम पूज्या माता स्व. श्रीमती भाग्य शर्मा जी की
पावन स्मृति में

श्रद्धांजलि

भक्त वत्सला शक्ति स्वरूपा तन्मयता की मूर्ति गई।
कार्य कौशला लगनसुशीला तत्परता स्फूर्ति गई॥
परमसंत सद्गुरु दयाल की आज्ञपालिका रूप गई।
तपः पूत मानव दयाल की अर्द्धाङ्गिनी स्वरूप गई॥
कर्म योगिनी मुनि दुर्लभ गति ब्रह्मलीन होकर पाई।
सत्यं शिवं सुन्दरम भाषा भाग्यमातु ने अपनाई॥
मानवमय यह "शिवनारायण" मन ही मन अब रोता है।
श्रद्धांजलि के सुमन चढ़ाकर शान्त मौन अब होता है॥

रचयिता—
शिव नारायण उपाध्याय "शिव"
शिव-सदन तराना
(उज्जैन) (म. प्र.)

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

Thursday, 10th June, 1993

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

Section One

The Views of Some of the Disciples OF Data Dayal Maharshi Shivbrat Lal Varman Ji Maharaj

BY

H. H. Param Dayal Pandit Faqir Chand Ji Maharaj
Manavata Mandir, Hoshiarpur.

Mr. Mohan Lal Nayyar of Delhi has reduced to writing the material about the biography and the most valuable teachings of Mehrshi Ji, after working very hard for five or six years. Being employed in government service, he could not spare much time in giving it the shape of a book, hence he has entrusted this work to me.

When master Mohan Lal Sharma of Hoshiarpur read the manuscript, he suggested that I should also write something in this context. So I am adding a

brief note. As a matter of fact, my attention is fixed on that highest level, at which nothing remains to be heard or talked about. In other words, I merge myself into the Pure Being, transcending my empirical existence. However, I continue to work under the guidance of some divine power, like a puppet under the current of the divine will due to my destined Karmas. I sometimes come down from the above-mentioned transcendental stage to write something or other, as I am doing now.

Friends ! I had an intense desire to meet the Supreme Being, the Master and the Ground of all Existence, from the very childhood. I continued to suffer for years from the pangs of separation from Him. When I was working for the construction of a new railway line as a railway employee at the Sillanwali railway station, I used to wander about in the desolate forest at night and shed tears with a longing to see God face to face. One night when I was roaming about in this self-forgetful stage, an old man clad in white dress appeared before me with a two-stringed instrument in his hand and asked, "Why are you weeping my child ?"

I replied to him that I keenly desired to see the Supreme Being, the Master and Ground of all Existence in human form and to love Him. I was

hardly eighteen at that time. The old man consoled me and said, "Child ! do not worry. In fact that Supreme Being has already come in human form for you. He will definitely meet you."

After sometime when my suffering from the pangs of separation from God became unbearable, I wept continuously for twenty four hours one day. Call it a dream, or a vision in the state of despodency, suddenly His Holiness Data Dayal Shivbrat Lal Ji Maharaj appeared to me and on being asked, he gave me his address in Lahore. Regarding him as the Supreme Master, Lord Rama or Supreme Being, I continued to write to him at least one letter every week, but there was no response. At last after ten months I did receive his letter replete with love, the same is being reproduced here :-

"Faqir, Radhaswami ! I did receive all your letters during these last ten months. I honour your sentiments. However, I attained the Truth and peace through the Radhaswami Faith by the grace of the sublime personality of His Holiness Rai Salig Ram Sahib. If you have no objection in adopting this path you can come to Lahore and meet me."

Only that person can understand the suffering and yearning of the heart, who has undergone this tortuous

experience himself. I went to the refuge of his feet with the same feeling of sacrifcing my life on that divine flame of light as a moth does by burning itself in fiery flame. I found him exactly the same as I had seen him in my vision. Thus my faith became unshakable. Since I had pure and intense relationship of love with him. I never cared to be concerned with my relatives and their vices or virtues throughout my life, nor have I any awareness as such.

His Holiness made an all out effort to turn the attention of my soul inward. In this connection, he made me follow his order with great caution and I feel pained when I recall the great sacrifices which he underwent for my sake. At last when he realised that my ignorance and illusion were incorrigible, he annointed me as Acharya (preceptor) and said :

"Oh you innocent soul ! Start initiating people and deliver spiritual discourses. That Supreme Master or true guide whose search has brought you to me, by His grace will appear to you in the form of the disciples (Satsangees). You yourself will attain perfection and also help thousands of others to cross the ocean of suffering." This happened in December 1918.

I have spent my whole life in loving my Sadguru Mehrishi Shivbrat Lal Ji Maharaj and in applying his teachings in my practical life and in constant internal spiritual march upward. By his grace I did attain what I was searching for. In other words, my illusion, ignorance and doubt disappeared and I attained perfect peace. As a matter of fact, whatever game (Leela) that Supreme Personality engaged me in, aimed at purifying my intelligence and granting me the highest experience, knowledge and supra-devotion.

I had been tormented by my impure intelligence, which was illusion producing empirical vision of the world. By the compassion of my Supreme Master my intelligence was purified. Now I am not influenced by the illussory intelligence and vision any more. The selections of the teaching of Mehrishi Ji Maharaj presented in this book appeared to be the best in the view of Mr. Mohan Lal Nayyar. There is no doubt these selections contain the remedy,which can purify man's intelligence. Consequently I am venturing to present this rare gem to the aspirants so that they and aspecially the educated ones should understand these teachings and get their intelligence purified. After the practical application of these teachings to their life they may attain truth and peace and

experience happiness.

Man's intelligence involves his life in various pleasures and pains. One cannot attain spiritual experience, without the purification of the intellect. That is why spiritual discourse (Satsang) of the Guru has been considered to be most essential in the religion of Saints.

The most sublime personality of Data Dayal Ji Maharaj was not only the Supreme Master or Supra-Being because of my faith only, but he was really such an incarnation of God. He continuously adopted different means to purify the intellect of the persons with different backgrounds throughout his life. I was one of such persons, who was treated for a special ailment, with a special and unique remedy.

Now that the secret is uncovered I am peaceful. All my doubts and illusions have disappeared and I am free from all worries. I have risen above the worshipper, worship and worshipped and have transcended the relativity of the attribute and the possesor of attribute. lie of creation and the creator, and the energy and the energiser. This is due to the compassion of Data Dayal Ji Maharaj for which I am indebted to him. Now for most of the time, I live at that level where there is neither I, nor thou, nor creator, creation, nor creature. When I come down to the

empirical level, I feel greatly obligated to that sublime personality of my Master and continue to sing the songs of his glory, not only in linguistic words, but with the language of my heart. If I had to write something in this context ten years ago, my expression would have been different. But now :--

Language mind and intelligence have gone ;
My soul has soared to the stateless state.
I am pure being, pure self anon ;
How can I the wonderous experience relate.
I have a little empirical consciousness ;
Because of the prior Karmic destiny.
The state I am in is that of statelessness
That is why these words have been written by me.

I am presenting the divine writings of the Guru with love and conviction, so that mankind may benefit in the purification and fixation on their intellect. I have no other motive than this.

THE LEVELS OF THE YOGA OF LIGHT AND SOUND

H. H. Param Dayal Pandit Faqir Chand Ji Maharaj

The ignorant one considers a Guru, or his ideal, the object of his worship, as something different from his own self and meditating on that holy form, succeeds in visualizing the holy form within himself. Although the holy form viewed by the devotee is an illusion, the creation of his own mind, yet he is attracted to it and becomes intoxicated with his own self-projected image. As a result af this self-intoxication, all mental processes are focussed inward to the depth of his mind, which becomes empty or void. That is why this state is called Sunn or vacuity. Physically this state is generated in that part of the brain which is the source of vital energy.

According to saint Kabir, this state of mental absorption is beyond description. Spirit is capable of ceasing the waves of thought. Neither sun,

nor moon, nor stars, nor even night and darkness, is perceived in this state. Musical instruments generate sweet sounds. Lightning is pleasant and it rains there without water. Kabir further says that this secret, or mystery, is recognized only by rare saints or enlightened persons, but whoever knows this mystery never returns to the cruel domain of the spatio-temporal region of death and destruction.

Disciple :- Is it true that the light in that region resembles the light of the moon ? And what is meant by dripping of nectar at this center ?

Faqir :--Yes, the light perceived in this state does resemble the light of the moon, the emanates from the area which is the source of vital energy, or sperm. The two hemispheres of the brain generate two different colours, one is yellow, the other is wheat coloured. When the attention of the Pure Self, or Surat, is fixed at that place, it perceives the dripping of nectar. We call the essence Sperm or vital energy, the source of which is in the brain. The nectar, the spermatazoa, creators of life, are viewed by the Surat as nectar when it turns inward.

As a small object appears larger under a microscope, so the living cells. or germ, look voluminous, because thought is so concentrated in the mind. Thus,

the unity of the activity of the mind assumes a global quality and the Surat enjoys bliss. The light generated by the total brain activity illuminating the sperm source, resembles that of the moon, partially white and partially yellow.

Disciple :--What is meant by the columns of diamonds and the trees of emeralds ?

Faqir :--- These are nothing but the waves of local light. The inner absorption, the blissful awareness, witnesses that light.

Disciple :--Does not this explanation seem intellectual and mental ? What else is Reality ? Explain to me on the basis of your own experience ?

Faqir ;-One's Surat remains within one's self and sees the visions there. How can it go outside ? This is the level of Sunn, which according to Radhaswami Faith is constituted by subtle matter. But the region of consciousness is far away from this state. This level is the level of mind, or temporality, Kaal. Kaal is the manifestation external to the Real Supreme Person, the Satpurusha. Our physical existence, or microcosm, is a parallel of the existence of the cosmos, or macrocosm. Just as there is a vital energy, or nectar, n our body, there is a centre of nectar, or

vital energy, in the universe. In other words, this body of ours is a miniature universe. If there were no life above, how could there be the current of life below ? Sun, earth, and moon all are vibrant with life. It is here that souls reside.

In fact, every spherical heavenly body is itself a living soul.

Disciple :-Have you ever seen these souls ?

Faqir :--Yes, I have seen them through deep concentration.

Disciple :--Can you give some concrete example ?

Faqir :--All the sights and scenes which have been described can be visualized only by those seekers who have the power of deep concentration, selfless love and devotion. For example, suppose a scientist wants to know how trees and plants talk. There is only one way to know. The scientist projects his thoughts into trees and plants, and through the concentration of his mind, begins to describe the scenes where trees and plants talk. This is an inner experience only.

Let me give you another example. When you

indulge in sex, you enjoy a special kind of pleasure. In that sexual activity, your blood and energy come into motion and a sort of nectar flows out of you. But tell me, can you enjoy sex without the presence of a woman ? Thus, woman is the object of your enjoyment or love. Similarly, nobody can attain the level of Sunn without love for the Guru, or an ideal. Devotees are sometimes thought ignorant and foolish, but none other than these ignorant, but pure of heart, people, can enjoy the pleasure of this state. Data Dayal Ji Maharaj remarked that enjoyment is nothing but ignorance, and knowledge does not contain it. As long as an individual does not accept the duality of the lover and the beloved, he will never be able to experience the object of love. That is the reason why most intellectuals and philosophers usually lead a sterile life.

Disciple :--Many practitioners of Surat-Shabda Yoga, the Yoga of Light and Sound, experience the light of the moon within. Can they be said to be at the level of Sunn ?

Faqir ;---They are not quite at the level of Sunn. At the level of Sunn there is only bliss, where ecstacy and self-forgetfulness lead to spiritual trance, or Samadhi. The person who experiences the dance of

the Surat in this state, cannot describe the bliss in words. As semen is an intoxicating energy, so when the Surat is sub-merged in its intoxication, it reaches Sunn, and enters the state of ecstacy. Those who waste their semen unnecessarily are always unstable. If an individual loses his semen, causing weakness of the body, and the weakness of body leads to frustration in his earthly life, how can he develop spiritually ? Since the vital energy stabilizes the body and makes a person alert and healthy, does it not follow that a person who fixes his mind on that area which is the source of vitality, will experience happiness, strength and bliss ? I know many people who have been practicing the Yoga of Light and Sound for a very long time, but their longings and desires have not been satisfied. They may die entertaining the thought that they will attain spiritual perfection after leaving their physical body, but such people are living under a great illusion. Saint Kabir has rightly remarked, "Whatever one experiences here in the material world one is bound to experience hereafter."

Disciple :-The level of Sunn is considered to be the level of the interplay between the Self, the Purusha, and the material nature, Prakriti. But you designate it as the source of vitality in the brain.

Faqir :--As a matter of fact, Purusha and Prakriti are the positive and negative states. The positive cells and the negative cells in the brain are drawn toward each other. This principle of attraction is universal and is called love. The positivity resides in male, while the negativity is in female, the main reason why male and female are naturally attracted toward each other. Similarly, the level which is constituted by subtle matter imbibes both the positive and negative states. Purusha and Prakriti are nothing but the positive and negative states respectively. Those who resort to spiritual practice with full consciousness and understanding pass through this level quickly. But those who are caught up in glib and metaphorical language gain nothing in their life. It should be noted that none except a dedicated person can experience the inner state of bliss, followed by the next state, that of Mahasunn, or greater vacuity.

There is total darkness at the level of Mahasunn, but this darkness is not like that which you experience in this physical world. People experience worldly darkness at a lower level of perception. Darkness at Mahasunn means that mind, being fixed at one point, stops wavering. The intellectual process ceases, consciousness stops its activity. In

other words, mind becomes unmind and intelligence, non-intelligence, or other than intelligence. With the absence of consciousness, one experiences that state of mind which he would experience at the time of death. This state is called thoughtless meditation, or Nirvikalp Samadhi.

Disciple :--What are the four secret spots of this level ?

Faqir :--Mind, intelligence (comprehension), consciousness and ego, or empirical self-consciousness The four faculties cease functioning here. The Surat at this level becomes immobile.

Disciple :--Is it difficult for an individual to pass through all these stages ?

Faqir :- No, what is needed is the extreme love and flexibility of the mind. The moment you are deeply in love, success is sure. The path is as natural and spontaneous as the function of eating and drinking.

Disciple :--Are these not illusions, unacceptable by intelligence ?

Faqir :—A devotee had a keen desire to see God face to face. He found a statue and loved its

form from the core of his heart. He was so intoxicated with that statue that he forgot all thinking. So his mind automatically became thoughtless. All persons who are absorbed with some thought, knowingly or unknowingly, attain the level of Mahasunn. All the levels beginning from the thousand-petalled Lotus, or Sehasradal Kamal, to Mahasunn are part of Kaal, or spatio-temporal existence, unlike the highest level of Truth. All these stages are within the gamut of mind. Mahasunn is the level of subtle matter, attainable through love. But those aspirants who want to attain this level with some selfish motive in their minds, or for the fulfilment of their material desires, fall from this level after some time. You have heard about devotees, or even Yogis, falling from this level. The saints do not consider this level to be the final one. Proceeding further, when the attention of mind is intensely concentrated with the assistance of an ideal, whether it be by repetition of name, meditation of Light and Sound, or something else, the mind becomes unmind and the soul must be released from this state. If the aspirant has the good fortune to be guided by a perfect master it is beneficial, otherwise the person, being caught up in the waves of thought, will have to bear the blows of pleasure and pain throughout his life.

Disciple :- What is the guidance through spiritual discourse of the perfect master ?

Faqir :---A perfect master can make you aware of your own potentialities and tell you honestly, "Whatever you have attained was entirely due to your own thought. You yourself had created your ideal, God, or master, in your own thought and thus have enjoyed that mental bliss. You yourself were the lover, yourself the beloved, and yourself the love. But you were not aware of this fact because of your ignorance. Now, you know it very well, so you must establish yourself in your inner self."

Disciple :--Is it not the Path of Knowledge ?

Faqir :--Yes, this level is referred to as the whirlpool cave, or Bhanwargufa. Under the influence of mental intoxication, when a person reaches this state he asks, "Who else was there besides me in that experience ?" There is a carousel, circularity, at this level, ever revolving, indicating the current of attention arising out of the soul and automatically re-entering into it. The flute note, "Soham, Soham", is heard and the aspirant is absorbed into his self-enjoyment. A man may believe "I and God are One", "I am God", or "I am Truth," or "I am

He" without any personal experience, with knowledge based on reading or listening to others. No aspirant can have the real experiential knowl dge unless he raises his mind to the state of unmind, or thoughtlessness, through the process of love or spiritual union. Purely theoretical knowledge cannot satisfy. It cannot rid one of the sorrow and disturbance of the mind. The seeker always remains unbalanced for no one has ever attained this spiritual level, nor will anyone attain it ever without understanding his own self, without undergoing the inward journey. If you observe someone talking glibly about enlightenment, watch his face closely. A self-realized person has a special glow in his eyes and a luster to his face, for it is very difficult to contain the bliss which one attains from this state. People without the personal experience of the inward journey are dry and pedantic, since their lives are confined only to words.

Disciple :--What is the reason that this state is called Bhanwargufa, the whirlpool cave ?

Faqir :-The veil of subtle mental elements envelops one's Surat at this state. This sphere is exceedingly fine and delicate, it is powerful and effective, creating an entirely new mental world by i s own thought when projected into the lower stage. Even

having attained this level, the aspirant continues to fall time and again. You can see this in the lives of so-called enlightened persons who bewail the deaths of their children and mourn the loss of material things. Such people fall victim to disease and mental suffering just as ordinary people.

But, we may ask, is this stage not at all dependable or stable ? The answer is, no, since it is still the result of direct perception. It still requires mental effort to comprehend it. That is why the saints have even denounced the Path of Knowledge and Yoga, because permanent peace is not possible to attain through them. They advise people to rise above the domain of mind and ascend to the Satloka, the region of the Truth.

One has to bear the vicissitudes of life in the region of Kaal or time. Here none can retain permanent peace or happiness. Mind is constantly engaged in thinking. It is not free from thought even for a second, and this thinking process is the cause of the dualities of pleasure and pain. Permanent peace has never been attained by any individual existing in the spatio-temporal world, because material creation, whether it be constituted by gross or subtle elements, can never remain in a steady state.

Disciple :-How can we get out of this situation ?

Faqir :-By now you must understand what is meant by the whirlpool cave, or Bhanwargufa. When undulating ideas appear in the mind, leading a person to realize that all apprehensions are his own creation, he should accept that this is only the mental state. When one practices concentration and goes deeper inside and is poised at one point, the thoughts disappear. The currents coming from the mind go back to it. At that moment one experiences rays of light which create a kind of circle and one hears a sound within resembling that of a flute. But none can stay at this level permanently. This intermittant practice of drawing the attention inward creates such a mental current, under the influence of which, the individual begins to say, "I am God", "I am God".

Since no individual can stay at this level permanently, this region also should not be considered the final goal. I myself was at this level for a very long time. When I went to my master for guidance, he wrote a book entitled 'Gift to the Faqir' in which all the poems were addressed to me. He said in this book that Jnana, or intuitive knowledge is a link between, but is not the final goal. He said, "Faqir, the proper time has not come for you. Come back to me after ten years for your further spiritual development. But meanwhile enjoy the present state of Bhanwargufa fully, though it is not the final goal."

I now have realized that even intuitive knowledge is not the final destination. Then what is the final destination or goal ?

Turn your attention upward, leaving the level of thought and apprehension. In other words, separate your attention from thought and impulses that arise in your mind. How can you withdraw your Surat from all sorts of thoughts and feelings ? You can do this by going deeply inward and attending to the sound within. Attention cannot be fixed at one point without catching the current of the internal sound. Meditation or the repetition of your Mantra or the light you have adopted for your inner development, all have to be abandoned. Your only guide, or Guru, in the form of ultimate Sound, Shabda, which is actually the product of the subtle elements of your mind, will remain with you. When your attention is fixed on that point, you will experience a state of stabili y and you will experience your own bliss, ecstacy, and joy. The subtle matter disappears at this state and the Surat becomes stabilized.

Inter-Religious Dialogue For Inter-faith Fellowship in Hinduism And Christianity

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

By Inter-Religious dialogue here is meant the comparative study of the practice and application of the core of Hindu and Christian way of life with reference to the highest attainment of religious experience on the part of their adherents as advocated, practised and attained by the sages and saints of India on the one hand, and by Lord Jesus, the Christ on the other. It is contended that such a comparative study would lead to the conclusion that outward differences in these two great religions fade away and a Unity in Diversity comes to the surface. It is so because religion in its true sense is as genuine a search for the ultimate Reality of the Supreme Truth as are the pursuits of science and philosophy.

The propulsive force behind world civilization

has been man's unquenchable desire to probe from the outer reaches of the universe to the depth of his own personality. To fathom the secrets of external nature and the experiences of the inner self, to glimpse the intimate relationship of spatio-temporal indestructible psyche has been the motivation for our cultural evolution. This innate urge to understand the immutable laws of natural forces and to overcome the limitations in human mastery of Space and Time, disease, old age and even death, is indicative of the presence in the finite personality of man that which in essence is Infinite and Eternal—the Soul, Atma, Logos.

Facts suggest that the gradual progress of human knowledge in the fields of science, religion and philosophy, which seems to be bringing man nearer the whole Truth, is hinting at the integration of all the specialized branches of knowledge into one organic pattern, the Eastern concept of "Unity In Diversity." There is no doubt that specialization in science has been of tremendous practical use. The synthesis has its part to play because it is hinting at one existing fact that all the ways of the search for truth are converging at one point.

That is exactly the case in the domain of religion which, as a genuine search for the Ultimate Truth, is

at par with science. Diversity of different branches of science does not deter it to advance towards the universal truth and arrive at the objectivity of real concepts of atoms, molecules, energy and motion. The lack of this unammity and objectivity concerning the concepts of God, soul and Nature is due to the lack of Inter-religious dialogue. Hinduism and Christianity do not only agree on the nature of the concepts of God and soul, but also advocate the Path of Love and Grace as the sole gate-way to the actualization of man's Perfection which consists in "being born again."

In an objetcive consideration, if God is omniscient, can He be limited to one language ? If omnipotent, can He not manifest Himself in the form most desired and understood by the devotees ? If omnipresent, is He not equally present in temple, mosque and church ?

Religion aims at the understanding of the inner nature, just as science aims at the understanding of the outer nature. Religion experiments with the Soul in the spiritual laboratory. As does scienc with matter in its physical laboratory

Thus science and religion have a similar stimu-

lation and approach to Truth with a similar goal of catholicity. There is no rational antagonism between the two disciplines.

With these similarities between science and religion, it would be appropriate to point out how the metaphysical notion of God and the concept of man as Soul in Hinduism and Christianity as well as the practical application of Love as the Path-way to man's attainment of union with God in both the great traditions, pave the way for Inter-faith Fellowship and toleration of religious views by the Inter-religious dialogue between Hindu and Christian practices of religion. The word Dharma (Religion) has a unique significance in Hinduism which actually is the substituted name for Sanatana Dharma, religious culture based on the revelations and experiences of the ancient saints and sages of India recorded in scriptures like the Vedas, the Upanissads, the Bhagavadgita and the Puranas, the metaphysics and ethics presented in semihistorical myth. In none of these scriptures there is mention of the word Hindu or Hinduism. However, Sanatana Dharm literally means Eternal Law, Indestructible basis and Ground of all that exists, lives and has its being. Sanatana means beginningless and endless i.e. everlasting.

The etymological derivation of the word Dharma is Sanskrit root Dhri, which means to hold, to stand on Thus the Ultimate Truth and Ground which is the groundless Ground and supportless Support of the cosmos, the unmoved Mover, is the everlasting, indestructible Permanence behind all change and evolution in the dimensions of time, space and causality. It is the Supreme Lord whose manifestations are all the beings, living and non-living, and whose parfect expression is Man as the Soul, the Spirit and the Self. Thus, Dharma is the cosmic eternal moral order which is the Ground of harmony and regularity in the planets, suns, galaxies, super-galaxies and infinite universes. This is the Law governing the creation of the Supreme Creator. Since the cosmos is harmonious and orderly, man must also adopt Dharma as self-discipline to lead a harmonious life. In this sense Dharma is also the ethical and moral code which both Hinduism and Christianity advocate. This discipline or code leads to man's union with God which, in Christian terminology, makes him attain the sonship of God. According to Hinduism, this discipline is of three types : (1) The discipline of body and physical actions called Karma Yoga ; (2) The Jnana Yoga, the path of knowledge, becoming only an instrument of God's plan, and not having any sense of ego in what a person thinks he has accom-

plished, and (3) The Bhakti Yoga--the path of Para-Love and Para-Devotion to God, directed to His personal manifestation in the form of Divine Descent or Ava ara, ultimately making one experience God in all beings. This metaphysical notion of God, who is present in all beings, in Hinduism, is also accepted in the Old Testament in the book 24 of Jeremiah, where Lord God says :

"Am I a God at hand, saith the Lord, and not a God a far-off ? Can any one hide himself in secret places that I shall not see him ? Saith the Lord. Do not I fill Heaven and Earth ? Saith the Lord."

The word Yoga is derived from the verb 'Yuj'-- to unite, with its English equivalent as yoke. Thus Yoga, whether it be of action, knowledge or devotion-Love, means harnessing or yoking our Soul or individual Self to Supreme Self--God. The word Yoke occurs in Old Testament and in the New Testament in this sense. In the book of Jeremiah 2 God points out that the people of Israel have not obeyed the Law. In God's words "Thine own wickedness shall correct thee, and thy own back-slidings shall reprove thee. ... ... Know therefore that is an evil thing..... and bitter that thou hast forsaken the Lord, Thy God ... .

"For of old time I have broken thy yoke and

burst my hands, and thou saidst, I will not transgress ? when upon every high hill and every green tree thou wanderest, playing the harlot."

In the same book Jeremiah 27 the word Yoke is again used in the same sense. The title of the Jeremiah book 27 is as follows :--

"A Yoke on the Prophet's Neck."

"In the beginning of the reign of Jehoiakim the son of Josiah king of Judah came the word unto Jeremiah from the Lord saying :

"Thus saith the Lord to me : make the bonds and yokes and put them upon my neck, and send them to the king of Edom--And it shall come to pass, that the nation and kingdom will not serve the same Nebuchednezzar, the king of Babylon, and that will not put their neck under the yoke of the king of Babylon."3 The word Yoke here is used in the sense of serving.

With reference to Yoke as Yoga, Lord Jesus Christ says :"Come unto me, al ye that labour and are heavy laden, had I will give you rest. Take my yoke upon you and learn of me,,.....for my yoke is easy and my burden is light."4

All the religions aim at taking Adam back to the Garden of Eden, leading him to the Kingdom of Heaven or to Life Eternal from his profane imperfect existence on the planet Earth. All of them, especially Hinduism and Christianity, presuppose that of all the beings (including angels or gods as the luminous form of the nature) man is the superiormost, because he is the perfect replica of God. The Upanishadic sages, who experienced the Truth that man's own Self was the Truest picture of the Supreme Self God, stated :

"The Supreme Lord is perfect ; this individuated self-spirit-man is perfect because it has emanated from the Perfect God (Supreme Father). If a man comes to know his own self, he would understand God."5

Jesus Christ has stated in the Sermon On The Mount that unqualified Love can make man Perfect. There is no antagonism in Hinduism and Christianity so far as the actualization of the potential perfection of man through Love is concerned. In the words of Jesus Christ :

"Ye have heard that it hath been said, Thou shalt love thy neighbour, and hate thine enemy. But I say unto you, Love your enemies, bless them that

curse you, do good to them that hate you.....that ye may be the children of your Father which is in heaven ; for He maketh his sun to rise on the evil and on the good, and sendeth rain on the just and on the unjust.....Be ye therefore Perfect even as your Father which is in heaven is Perfect."6

Thus the actualization of the potential Perfection of man summed up in the above quoted invocation of the Upanishad, is confirmed by Lord Jesus Christ.

(To Be Continued)

Monthly Message

My dearest Ownselves Satsangis,
Blessings of the Supreme
Compassionate Lord,

We arrived at Indore on the 22nd in the morning at 4 a.m. Ach. Smt. Rama Bai, her worthy son Akhilesh and brother Shri Mahendra Garg were present at the Rly. Station to receive us. They took us to the residence of Sh. Mahendra Garg. Some satsangis came to see me in the morning. We went to the house of Smt. Atma Bai the maternal aunt of Ach. Rama Bai for a short while. There her relatives were present. After a brief talk we came back to the residence of Sh. Mahendra. The wife and children of Sh. Mahendra always serve me with Love and devotion. After lunch some special persons including Sh. Ram Dutta Sharma who runs a factory in Indore came to see me. Sh. Ram Dutta Sharma is the brother of Ach. S. D. Sharma of Modinagar.

Due to his faith and devotion he is prospering in his [redacted] I am using the words "Faith and devotion" again and again because every Satsangi, having unfathomable love and unflinching faith, can lead a happy life and attain Perfection even in this sorrowful world. My dearest satsangis, you should not forget the following lines even far a moment :

'In the Court of the Lord there is no want of things;
Yet one misses His Grace due to one's own shortcomings.'

The import of the couplet is that a Satsangi having unfathomable Love for Sadguru the Perfect Master, Can never experience physical, mental, financial or spiritual imperfection. Whenever he experiences failure, affliction or sorrow, the sole cause is want of service brimming with love for the Perfect Master. It is evident that faith and devotion are strengthened only by to love, and that the sole purpose of devotion, faith service or meditation is to attain the State of Para-Love and Para-devotion.

We proceeded for Ujjain by car at about 2 p.m. We should have started an hour earlier because we were to stop over on the way at village Kachnaria where Shri Ishwar Das was running a Radhaswami Centre with the co-operation of Smt. Ratan Bai.

Ach. Rama Bai had told Ratan Bai to wait for us till 2 p.m. and to leave for Ujjain in case we could not reach there till then. It was already about 3 p.m. before we could reach Kachnaria, and every body said that we should lose no more time by proceeding to Kachnaria by the rugged path, and that we should go straight to Ujjain. But well-knowing the deep devotion of Smt. Ratan Bai. I was sure that she would be, wating for us till 3 p.m. It happened so indeed. When we reached the residence of Smt. Ratan Bai, ewe were informed that she had just gone to the main road and was waiting for the bus. Her wise son immediately took out his motor-cycle and dashed to the highway before Ratan Bai could catch the bus for Ujjain. Smt. Ratan Bai returned home overwhelmed with love and joy. She at once accorded me a warm welcome and performed lustration with utmost devotion and accompanied us to Ujjain.

In Ujjain a large number of satsangis congregated in the Agrasen Dharmshala the venue of satsang. Satsangis from Ujjain, Tarana, Baraut, Etawa and adjoining villages were earnestly and devoutly awaiting my arrival at the Satsang venue. As soon as I got down from the car, the crowd of devoted satsangis rushed to welcome me. I was overwhelmed with their love and realized that it was my sacred duty to

serve these eredulous Satsangis with true guidance. Param Dayal Ji Maharaj had already told me this thing in his last satsang delivered in the Mercy Hospital, Pitsburg, U.S.A. He had ordained, "Dayal Sharma ! Thy present spiritual state is that of Jeevan Mukti (Perfection). There is no "I" or ego in thee now, but only "Thou." And thou shalt attain the state of Being in which I stay now and am experiencing :

'Neither I count on beads of rosary,
Nor the Name of God or Ram do I repreat ;
Now my Ram repeats my name,
'Tis then that I find eternal retreat.'

In that state the conflict of 'I' and 'Thou' ceases to exist. But you will attain that state only when you will perform the great service to the satsangis by sharing your experience with them through satsang." And hence my dearest Sadguru-like satsangis ! I have offered the above explanation relating to the devotion and love of the satsangis of Ujjain.

After about an hour of affectionate talk with the Satsangis in the Dharmashala and suggesting ways of resolving their problems, went to Ach. Rama Bai's house where some satsangis and Ach. Surya Narayan Bhatta were present. After dinner also I had infor-

mal talk with them all till 11 O' clock in the night. The lodging arrangement in the Dharmashala was very nice. My room was separate from others. All the day long I remained in the Dharmashala, but for my night rest I went to the residence of Ach. Rama Bai because a few days earlier I had suffered from indigestion. I always like that all the satsangis and Acharyas coming from outside should stay at the satsang venue. In shis way not only the mutual love of satsangis increases, but they also gain True Knowledge by discussing on the topics of satsang among themselves. The satsangs continued to be held on March 22nd, 23rd and 24th. Every morning I walked for miles along with Shri Mahendra Garg, Ach. Rama Bai, Ach. Shabdanand and Sadhna Ji. A spontaneous satsang emerged during our walk. Sometimes we went towards Mangal Nath where is situated the Ashrama of sage Sandeepayan and where Purneshwar Lord Krishna received His education with His classfellow Sudama. The relation of Lord Krishna and Sudama as Preceptor and disciple, and Perfect Master and satsangi, gives us the lesson that true Love with Guru the Perfect Master strengthens that devotion and faith which is essential for a person to be emancipated across the world-ocean. Sometimes we walked far a way from the town towards the stadium in which international cricket matches

were played. The game of cricket is also a kind of meditation (Samadhi). One experiences Nishkama (desireless) Karma Yoga while playing cricket.

In Bhagavadgita Lord Krishna has stated Nishkama Karma-Yoga to be higher than Sanyasa (renunciation) and Jnana Yoga because in this Yoga the Yogin, through total abstinence, treating his Ideal as the sole Supreme Goal devotes himself to Karma. In the game of cricket also the batsman concentrates his whole attention on the ball which he hits off to the farthest length, scoring boundary or sixer, earns audience's applause and gets satisfaction. If, while playing; he diverts his attention from his absorption in the play and begins imagining how his boundary and sixer hits would earn applause and joy for him, he can never be successful in his play. Nishkam (desireless) Karma-Yoga can be successful by pursuing either of the two aims. A Yogi or devotee should either direct his Karmas towards the welfare and service of others for self-purification so as to attain the object of 'Shiv Sankalpa' (optimistic view) through mind, speech and deed, or, should dedicate all his Karmas to his Perfect Master and Ideal, and ultimately experience Jeevan Mukti (Perfection) and Lotuslike State (Videh Avastha) through Para-devotion and Para-Love. It is this

Truth which Param Dayal Ji Maharaj told me in his last satsang in words full of Love, which I have mentioned above.

The Blessing-Satsang was solemnized in the morning of March 24th, and the satsangis experienced the beatific nectar of Devotion and Love. After lunch, special Prasad (Blessed Food) was distributed to the workers of the Kitchen. At about 2p.m. we, along with Shri Charan Jit Singh, Km. Nirmala Sharma and Shri Sundar Das, proceeded to Itarsi by Jeep via Bhopal and arrived at the residence of Sh. Charan Jit Singh at 10 O'clock in the night. There were present many Satsangis with whom I had a talk for a pretty long time.

A great grand satsang was organized in the premises of the Temple of Devi on March 25th in the evening. Information was already made public in the city about this Satsang through pamphlets and posters. Satsangis and non--Satsangis in thousands participated in the Satsang. The intelligentsia and respectable class of the city were also present. The Satsang was organized on the 25 and 26 March and many aspirants including the priest of the temple influenced by the satsang, got initiated in the Religion of Humanism.

On the 29th March we went to the residence of Shri Sundar Das for our lunch and to meet hundreds of Sindhi satsangis. There also some new-comers got initiated. Between the night of 27th and 28th we left for Hoshiarpur Via Agra and arrived at Hoshiarpur on the 30th March instead of 29th at 7-30 a.m.

You already know that the last rites of Cremation of Bhagya Mata Ji was performed. She dedicated her life to the service of the satsangis and myself according to the orders and instructions of Param Dayal Ji Maharaj, and ultimately attained the sublime state yearned by the saints. We should take inspiration from her divine life and sacrifice and continue to march forward on the Mission of Humanity, so that we may achieve the aim established by Bhagya Mata Ji and Param Dayal Ji Maharaj.

This much of information about the Satsang tour and the activities of Manavata Mandir seems to be sufficient for this monthly message. The information about the Vaisakhi Sant Sammelan and the activities of Manavata Mandir afterwards upto May 12th will be brought to you in the next monthly message.

With these words I send you my sincerest and

best wishes for this month and heartfelt blessings to you all for your Health, Happiness and Peace in life.

Radhaswami to you all.

-Yours in Faqir

Manay

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परम सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।

BOOK POST

Regd No. 26265/74 JUNE. 10th 1993

MANAV MANDIR PB HSP—5

Address

1011. Mr. C. G. GUPTA, Teacher,
P.O. ITLAM.
[illegible] NIZAMABAD, [illegible] 5310. A.P.

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR . 146 001
PHONE : 22639

Shiv Dev Rao Press Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)